अंक : 3, जून 2010

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
जून 2010 अंक 3

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० के द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर- 273001
फोन : +91-551-2230004, फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geag_india@yahoo.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक, 3rd स्टेज,
बनशंकरी, बैंग्लोर- 560085, भारत
फोन : +91-080-26699512, +91-080-26699522
फैक्स :+91-080-26699410,
ईमेल : amebang@giasbg01.vsnl.net.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंग्लोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक : के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन
प्रबन्ध सम्पादक : टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद
डा० सुमन सिन्हा
अंजू पाण्डेय, जी.ई.ए.जी.

अनुवाद समन्वय
डा० अनीता सिंह, जी.ई.ए.जी.
पूर्णिमा कंदी, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्धन
एम० शोभा मइया, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, ख़ालिद जमाल, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
राजेश गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन, अमेरिकन, इण्डोनेशियन, पश्चिमी अफ्रीकन, ब्राज़ीलियन एवं चाइनीज़ संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया एवं तेलगू

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

प्रिय पाठक

हिन्दी अनुवादित तीसरे संस्करण को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए आपके उत्साही सहयोग के लिए हम आभारी हैं। हमें यह जानकर अति प्रसन्नता है कि हिन्दी संस्करण लोगों द्वारा स्वीकारा व सराहा जा रहा है। कुछ पाठकों ने बताया कि लीज़ा इण्डिया के स्थानीय भाषा में होने से जमीनी स्तर पर अधिकाधिक लाभ मिल रहा है।

हमें आपको यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि हिन्दी, तमिल और कन्नड़ के अलावा तेलगू और उड़िया में भी हम इसकी प्रति निकाल रहे हैं। इस अंक को निकालने हेतु गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप के सहयोग के आभारी हैं। यह पत्रिका आपको एक पूरक प्रति के रूप में भेजी जा रही है। यदि आप भविष्य में अंग्रेजी में इस पत्रिका हेतु इच्छुक हैं तो हमें सूचित करें। हम आपको अपनी डाक सूची में शामिल करेंगे।

इस पत्रिका पर आपके सुझावों का स्वागत है।

लीज़ा इण्डिया टीम
जून, 2010

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपना उत्पादन और आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों का उपयोग होता है और यदि आवश्यकता पड़ी भी तो सुरक्षित और प्रभावी बाह्य संसाधनों का ही उपयोग होता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है। साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

शहर में गाँव : त्रिवेन्द्रम में स्वास्थ्यवर्धक सब्ज़ियाँ

5

जी0एस0 उन्नी कृष्णन नायर

किसी भी क्षेत्र की जन जागरूकता में समाचार पत्रों की अहम् भूमिका होती है। त्रिवेन्द्रम में कीटनाशकों के प्रति संवेदना को बढ़ाने में एक रिपोर्ट के प्रकाशन ने पहल किया जिससे यहाँ की जनता कीटनाशकों के प्रभावों से बचने हेतु इतनी जागरूक हुई कि स्वयं अपने घरों की छतों पर सब्ज़ियों की खेती की ओर मुखरित हो गई। इस गतिविधि से इन्हें लाभ तो हुआ ही ये अन्य क्षेत्रों हेतु प्रेरणा स्रोत भी बन गये।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्धन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्वान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 30 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी0ई0ए0जी0 ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है।

इलिया, कम बाहरी लागत स्थाई कृषि हेतु जानकारी का केन्द्र है। इलिया पत्रिकाओं तथा अन्य प्रकाशनों द्वारा कम लागत स्थाई कृषि के अनुकूलन को प्रोत्साहित करती है। साथ ही विशेष जानकारी का एक खाका भी तैयार करती है। इलिया से सम्बन्धित सभी जानकारियां वेबसाइट www.leisa.info पर भी मिलती हैं। यह भी उल्लिखित है कि इस वेबसाइट पर स्थाई कृषि से सम्बन्धित अन्य जानकारियां भी उपलब्ध रहती हैं।

सीमान्त कृषक हेतु गृहवाटिका

रोजी सुवाल, विमल राज रेगमी, भुवन स्थापित एवं अर्जिना श्रेष्ठ **10**

नेपाल में विकास परियोजनाएं, प्रायः नीति विषयक जैसे अधिकार प्राप्ति पर आधारित तथा जीविका को कम महत्व देने वाले विषयों पर ही केन्द्रित होने के कारण निर्धन व्यक्तियों पर इसका तात्कालिक प्रभाव नहीं दिखता। यह लेख स्वयं सेवी संस्था के प्रयास को वर्णित करता है कि ग्रामीण निवासियों को गृहवाटिका की मदद से ज़मीदारी तथा बाज़ार पर उनकी निर्भरता को कैसे कम किया जा सकता है।

बाज़ार जुड़ाव केन्द्र द्वारा उन्नति

बेनॉइट थेरी एवं इमेलिन श्नीडर **12**

एनालनजीरोफो क्षेत्र के पूर्वी मदगास्कर में कृषि उत्पादों की एक व्यापक श्रेणी मिलती है जो अपने आप में अनुपम है। यहाँ स्थायी तौर पर लहसुन, लीची, सब्ज़ियाँ, चावल और शहद का उत्पादन होता है जिससे कि इस क्षेत्र की सम्पन्नता का पता चलता है। यह क्षेत्र इतना सम्पन्न होने के बावजूद भी यहाँ के गरीब किसानों को बहुत सारी समस्याओं से जूझना पड़ता है जिसमें मुख्य रूप से उत्पादों के विपणन हेतु स्थायी साझीदारों को प्राप्त करना है। किसानों और मधुमक्खीपालकों की इन्हीं समस्याओं के समाधान हेतु 'मार्केट एक्सेस सेन्टर' (बाज़ार जुड़ाव केन्द्र) बनाये जा रहे हैं।

जीवाणु सम्पदा से फसल गुणवत्ता एवं मृदा स्वास्थ्य नियंत्रण

डी0पी0 सिंह एवं एच0बी0 सिंह **16**

जीवाणु,जीवन्त मृदा के जरूरी तत्व होते हैं। जिस मृदा में जीवाणु अधिक होते हैं वह मृदा बीमारियों एवं कीटों से लड़ने में सक्षम तथा उपज बढ़ाने की परिचायक होती है। वैज्ञानिक शोध भी दर्शाते हैं कि जैविक विधि की खेती प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धन पर निर्भर होती है, विशेषतः मृदा में जीवाणु विविधता व सघनता बढ़ाने में।

आदिवासियों की देशी कृषि पद्धति : खाद्य, पोषण एवं दवा का स्रोत

एस0के0 सारंगी **18**

अरूणांचल प्रदेश के आदिवासी जिस पर्वतीय कृषि पद्धति को अपनाते हैं उसमें विविध प्रकार की फसल प्रजातियाँ, औषधीय पौधे, वन्य प्रजातियाँ शामिल हैं। इस कृषि पद्धति द्वारा समुदाय के किसान खाद्य भण्डारण, संतुलित पोषण और स्वास्थ्य लाभ के साथ जैव विविधता का संरक्षण भी कर रहे हैं। भविष्य में इन प्रजातियों की प्रभाविता व लाभ हेतु आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार के पौधों की जातियों का संरक्षण किया जाय एवं जैव विविधता की पहचान और उसकी देखभाल को प्रोत्साहित किया जाय।

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, 2010

5 **शहर में गाँव : त्रिवेन्द्रम में स्वास्थ्यवर्धक सब्ज़ियाँ**
जी0एस0 उन्नी कृष्णन नायर

7 **कीटनाशक का स्वास्थ्य पर प्रभाव : एक अध्ययन**
पी0 इन्दिरा देवी

9 **सार्वजनिक–निजी भागीदारी से लाभ प्राप्त करना**
योगेश सावन्त एवं मेघराज सपाटे

10 **सीमान्त कृषक हेतु गृहवाटिका**
रोज़ी सुवाल, विमल राज रेगमी, भुवन स्थापित एवं अर्जिना श्रेष्ठ

12 **बाज़ार जुड़ाव केन्द्र द्वारा उन्नति**
बेनॉइट थेरी एवं इमेलिन श्नीडर

13 **वातावरण के अनुकूल तथा सस्ता कीट–प्रबन्धन**
एल. नारायण रेड्डी

15 **पारम्परिक विधियों द्वारा मवेशियों का स्वास्थ्य प्रबन्धन**
गंगाधर नायक

16 **जीवाणु सम्पदा से फसल गुणवत्ता एवं मृदा स्वास्थ्य नियंत्रण**
डी0पी0 सिंह एवं एच0बी0 सिंह

18 **आदिवासियों की देशी कृषि पद्धति : खाद्य, पोषण.....**
एस0के0 सारंगी

20 **अपनी आजीविका अपने हाथ**
डा0 अनिता सिंह एवं अभिनेष कुमार

अपनी आजीविका अपने हाथ

डा0 अनिता सिंह एवं अभिनेष कुमार **20**

कृषि प्रणाली में वृक्षारोपण, पशुपालन, गृहवाटिका, मत्स्य, मुर्गी / बत्तख पालन आदि का समावेश इस तंत्र के स्थायीकरण में दृढ़ स्तम्भ की तरह कार्य करता है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र की जलवायु मे त्वरित परिवर्तन के कारण बाढ़ और सूखा दोनों ही स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। इन स्थितियों से निपटने हेतु इस क्षेत्र का कृषक समुदाय, एकीकृत कृषि प्रणाली को अपनाकर आजीविका के स्थाईत्व हेतु अग्रसर हो रहा है। यह लेख ऐसे ही प्रगतिशील कृषक की कृषि प्रणाली को दर्शाता है।

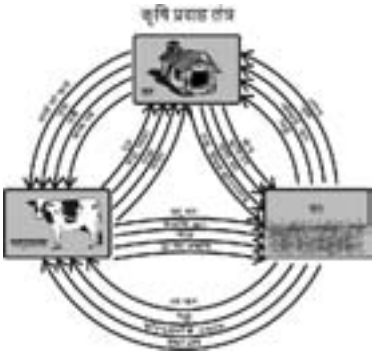

यह अंक...

लीज़ा इण्डिया का यह हिन्दी संस्करण कृषि की व्यवहारिक प्रक्रियाओं से लेकर कृषि उत्पादों को बाज़ार तक पहुँचाने वाली जटिल प्रक्रियाओं को बहुत ही आकर्षक ढंग से लेखों के रूप में पिरोये हुए है। लीज़ा इण्डिया हिन्दी में तीसरी बार प्रकाशित हो रहा है।

लीज़ा इण्डिया के इस अंक के प्रथम लेख ''शहर में गाँव : त्रिवेन्द्रम स्वास्थ्यवर्धक सब्ज़ियाँ'' जैविक विधि से छत पर सब्जियों के उत्पादन हेतु त्रिवेन्द्रम वासियों की जागरूकता को प्रदर्शित करता है। यह लेख शहरी जनता को कीटनाशक मुक्त सब्ज़ी प्राप्त करने की संभावनाओं को उजागर करता है। इस अंक के ''जीवाणु सम्पदा से फसल गुणवत्ता एवं मृदा स्वास्थ्य नियंत्रण'' नामक लेख उन प्रक्रियाओं को स्पष्ट करता है जो मृदा एवं जैव तत्वों के सम्बन्ध को दर्शाती है, साथ ही यह लेख कृषि में जैव विविधता के महत्व को भी स्पष्ट करता है। इस लेख द्वारा मृदा संबंधित उन सभी जानकारियों की तरफ ध्यान आकृष्ट हो जाता है जो जैविक विधि को प्रोत्साहित करते हुए पर्यावरण सम्मत भी हैं।

गंगाधर नायक का लेख ''मवेशियों के स्वास्थ्य प्रबन्धन में पारम्परिक विधियाँ'' पशुओं के स्वास्थ्य हेतु उड़ीसा की परम्परागत विधियों को अपनाये जाने वाले अनुभव की जानकारी देता है। यदि ध्यान दिया जाये तो इस प्रकार की परम्परागत विधियाँ लगभग सभी क्षेत्रों में मौजूद होंगी और वातावरण को रसायन मुक्त रखने हेतु उन्हें खोजने की अत्यन्त आवश्यकता है। इसी विषय का विस्तृत रूप पी0 इन्दिरा देवी द्वारा लिखित ''कीटनाशक प्रयोग द्वारा स्वास्थ्य क्षति : एक अध्ययन'' नामक लेख में स्पष्ट होता है। इस अंक में बेनाइट थेरी और श्नीडर द्वारा लिखित ''बाजार जुड़ाव केन्द्र द्वारा उन्नति'' नामक लेख किसानों की हक सम्बन्धी मूलभूत समस्याओं के निदान की प्रक्रियाओं का उल्लेख करता है।

इस प्रकार लीज़ा इण्डिया का यह हिन्दी संस्करण जैविक मृदा, जैविक उर्वरक, जैविक खेती और रसायनमुक्त वातावरण की ओर बढ़ने हेतु एक प्रयास के रूप में है। इस अंक का आखिरी लेख ''अपनी आजीविका अपने हाथ'' एक ऐसे किसान की कहानी है जो सीानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों के समुचित प्रबन्धन, समन्वय एवं कृषि तंत्रों (खेत, घर, पशुशाला आदि) के चक्रीय प्रणाली को अपनाते हुए एक प्रगतिशील किसान तो है ही साथ ही अपने प्रयासों द्वारा अन्य किसानों हेतु मॉडल भी है।

लीज़ा के इस अंक के लेखों के उपयोग एवं मूल्यांकन हेतु पाठकों की प्रतिक्रियाओं का हमें इंतजार रहेगा।

• **सम्पादक मण्डल**

शहर में गाँव : त्रिवेन्द्रम में स्वास्थ्यवर्धक सब्ज़ियाँ

जी०एस० उन्नी कृष्णन नायर*

Healthy Produce, People and Environment
LEISA INDIA, September 2007, Vol. 9, No.3, Pg. # 13-14

त्रिवेन्द्रम, जो केरल राज्य की राजधानी है, भारतवर्ष के दक्षिणी छोर पर बसा घनी जनसंख्या वाला एक शहर है। आस–पास के उपशहरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा यहाँ जमीन की कीमत काफी अधिक है इसलिए यहाँ घर छोटे तथा इनमें खाली स्थान नहीं होते, जहाँ कोई पौधा उगाया जा सके। यहाँ के अधिकाँश निवासी सरकारी या निजी क्षेत्र के कार्यालयों में कार्यरत हैं। यहाँ पर खपत होने वाली खाद्य सामग्री, विशेष रूप से सब्ज़ी की आपूर्ति आस–पास के ग्रामीण क्षेत्रों और पड़ोसी राज्य तमिलनाडु से होती है।

केरल में साक्षरता की दर काफी अधिक है जो त्रिवेन्द्रम में लगभग शत–प्रतिशत तक पहुँच गयी है। यहाँ के लोग स्वास्थ्य के प्रति बहुत जागरूक हैं इसलिए खाद्य सामग्री के स्रोत की जानकारी रखते हैं। कृषि विश्वविद्यालय के कीटविज्ञान विभाग द्वारा राज्य में सब्ज़ियों के नमूनों का परीक्षण किया गया एवं रिपोर्ट से ज्ञात हुआ कि उनमें कीटनाशकों के अवशेष की मात्रा निर्धारित मानक से काफी अधिक थी। अध्ययन में यह भी पाया गया कि अन्य सब्ज़ियों की अपेक्षा करेला, लोबिया, जिसकी विक्री शहर में हो रही थी, में कीटनाशकों का अवशेष अधिक मात्रा में था। आगे इस रिपोर्ट में कीटनाशकों के कारण होने वाली बीमारियों एवं स्वास्थ्य समस्याओं को भी स्पष्ट रूप से बताया गया था एवं इस रिपोर्ट का प्रकाशन अखबार आदि में भी किया गया जिससे यहाँ के लोगों की चिन्तायें बढ़ गईं। वर्ष 2002 में राज्य के स्वास्थ्य सेवा निदेशालय के द्वारा बाज़ार में बिकने वाले फलों एवं सब्ज़ियों में रसायनिक अवशेष की मात्रा पर एक सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी चेतावनी जारी की गयी।

छतों पर खेती को प्रोत्साहन

एक दशक से कुछ उत्साही व्यक्तियों के द्वारा छत पर सब्ज़ियों की खेती की जा रही थी जिसे देखकर त्रिवेन्द्रम के कुछ किसानों ने भी कुछ समय से जैविक सब्ज़ियों का उत्पादन करना शुरू किया था परन्तु यह योजनाबद्ध ढंग से नहीं किया जा रहा था। स्वास्थ्य संबंधी चेतावनी जारी होने के बाद कुछ निवासियों एवं आवासीय संगठनों ने गम्भीरता पूर्वक विचार–विमर्श कर अपने घरों के छतों पर सब्ज़ियाँ उगाने के बारे में सोचा। उन्होंने मदद के लिए स्थानीय सरकार से सम्पर्क किया तथा वर्ष 2002 के अंत में केरल सरकार के कृषि विभाग द्वारा एक योजना ''शहर में गाँव'' प्रारम्भ की गयी। इसे विभिन्न संचार माध्यमों जैसे टी.वी., रेडियो, समाचार पत्र आदि के माध्यम से लोकप्रिय बनाया गया जिससे यह योजना बहुत सफल रही एवं बहुत से आवासीय संगठनों एवं निवासियों ने इसमें पंजीयन कराकर इसमें सहभागिता सुनिश्चित किया। त्रिवेन्द्रम के हजारों व्यक्तियों तथा केरल के अन्य शहरों में भी छत पर खेती को अपनाया गया। इस योजनान्तर्गत छत पर खेती करने वालों को सब्ज़ियों के बीज, प्लास्टिक की थैली या गमला तथा कृषि यंत्र की आपूर्ति आधे मूल्य पर की गई। जैविक खाद बनाने हेतु सीमेन्ट की टंकियों की भी

फोटो : लेखक

''शहर में गाँव'' कार्यक्रम द्वारा ताज़ी सब्ज़ियों का लाभ

आपूर्ति आधे मूल्य पर की गई जिससे शहर के नये उत्पादक वर्मी कम्पोस्ट तैयार कर सकें। साथ ही साथ निःशुल्क अध्ययन कक्षाओं, जो सीजन में एक बार या प्रत्येक तीन माह पर होती, का आयोजन भी राज्य के कृषि विभाग एवं स्थानीय निवासियों के संगठनों की भागीदारी से किया गया। सैद्वान्तिक कक्षाओं के साथ ही समय–समय पर शहरी खेती की विधियों पर ''स्लाईड–शो'' दिखाया जाता तथा छत पर हो रही दो–तीन खेती के अवलोकन हेतु भ्रमण भी कराया जाता। कृषि विभाग एवं शहरी निवासियों के संगठन द्वारा एक विशेषज्ञ दल की भी व्यवस्था की गई जो नये छत के खेतों का भ्रमण कर प्रतिभागियों का उत्साहवर्धन करते कि वह विशेषज्ञों से सम्पर्क कर अतिरिक्त सलाह समय–समय पर प्राप्त कर सकें। छत की खेती से संबंधित लेख का प्रकाशन स्थानीय समाचार पत्रों में होने के कारण 10,000 से अधिक लोगों ने इसके विषय में पूछ–ताछ की।

शहरी कृषि

वर्तमान में इस योजना में लगभग 2000 परिवार छत पर खेती का कार्य त्रिवेन्द्रम में कर रहे हैं तथा अनेक लोग स्वयं के संसाधन से भी यह कार्य कर रहे हैं जिसमें थैलियों या गमलों मे मिट्टी, बालू, तथा वर्मी कम्पोस्ट (या कोई अन्य जैविक खाद जैसे गोबर, मुर्गी या बकरी की खाद जो उपलब्ध हो) का मिश्रण 2:1:1 अनुपात में भर कर इन गमलों को एक ईंट पर रखते है ताकि वह सीधे छत के संपर्क में नहीं रहे। इसके बाद विभिन्न प्रकार के सब्ज़ियों के पौधों को इन थैलियों / गमलों में रोपित कर दिया जाता है। कुछ परिवार इनमें अनन्नास, केला आदि भी लगाते हैं। कीटों को नियंत्रित करने के लिए फसल चक्र अपनाते हैं तथा सिंचाई बहुत ध्यानपूर्वक किया जाता है जिससे कि पानी बह कर छत पर नहीं फैलने पायें। यदि परिवार के सभी सदस्य बाहर चले जाते हैं तब उन्हें एक जल भरा प्लास्टिक जिसमें एक अत्यन्त छोटा छिद्र होता है को पौधों के ऊपर रखने की सलाह दी जाती है। समय–समय पर वर्मी कम्पोस्ट, सूखा गोबर, साधारण कम्पोस्ट या नीम की खली का प्रयोग भी किया जाता है। कुछ परिवार पौधों को ग्रीन हाउस में भी उगाते हैं।

मॉडल में सुधार

सभी शहरी किसानों को वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने की सलाह दी जाती है क्योंकि यह बहुत ही सरल विधि है इसे सीमेन्ट की टंकियों में जो कुओं में प्रयोग होने वाले छल्लों से बनी होती है, या पुराने टंकियों तथा लकड़ी के बक्सों में आसानी से बनाया जा सकता है। इसमें सबसे उपयुक्त छल्ले वाली सीमेन्ट की टंकी होती है जिसकी आपूर्ति कृषि विभाग के द्वारा मात्र 6 अमेरिकी डालर के दर से की जाती है। चूँकि यह 2.5 फिट गोलाई का होता है अतः इसका प्रयोग घर के पिछवाड़े में किया जा सकता है। केचुँएं तेजी से संख्या बढ़ा कर अच्छा कम्पोस्ट तैयार करते हैं परन्तु चीटिंयों से बचाव के लिए टंकी के निचले रिंग में पानी भर कर किसानों द्वारा आसानी से सुरक्षित किया जा सकता है। साथ ही यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि इसमें प्लास्टिक, शीशा, तेल या तेज गंधयुक्त वस्तुएं आदि न पड़े। स्थान की कमी को देखते हुए मुर्गी पालन को समग्रित किया जा सकता है किन्तु इसके लिए अतिरिक्त देखभाल की आवश्यकता होती है। कुछ शहरी उत्पादक लकड़ी के शेड में मुर्गी पालते हैं जिसमें 10 चूजे तक आ जाते हैं। उन्हें बाहर छत पर खाने के समय छोड़ा जाता है। इसमें गर्मी एक गम्भीर समस्या होती हैं किन्तु इसका समाधान शेड के ऊपर हरे रंग का त्रिपाल फैला कर किया जा सकता है।

श्री के.पी. पिल्लई के द्वारा पिछले 30 वर्षों से छत पर फसल उगायी जा रही है जो कि अन्य लोगों के लिए एक आदर्श है। इनके छत का क्षेत्रफल मात्र 800 वर्ग फीट है और ये यहाँ सब्ज़ियों की खेती, गमलों तथा रबड़ के टायरों में मिट्टी भर कर करते हैं। पौधों के लिए पोषण का मुख्य स्रोत बकरी की खाद है। हांलाकि वह सूखा गोबर, हड्डी की खाद तथा मूँगफली के खली का भी प्रयोग करते हैं। श्री पिल्लई शहरी खेती योजना से जुड़ने वाले व्यक्तियों में प्रथम व्यक्ति थे और अब वह वर्मी कम्पोस्ट उत्पादित करते हैं। कीटों का नियंत्रण साबुन का घोल (4–5 चम्मच सर्फ एक बाल्टी जल में घोलकर) का प्रयोग कर किया जाता हैं। अनुभव से उन्हें अब यह जानकारी हो गई है कि सब्ज़ी की कौन सी प्रजाति अच्छी रहेगी उसका बीज स्वयं तैयार करते हैं। छत पर मचान तैयार किये जाते हैं उस पर कुन्दरू आदि लतादार सब्ज़ियाँ फैलाई जाती हैं। श्री पिल्लई एवं उनकी पत्नी लाभ को देखते हुए प्रतिदिन एक घण्टा प्रातःकाल एवं सायंकाल अपने छत की खेती में देते हैं। श्री पिल्लई को उदाहरण मानकर बहुत से परिवारों के द्वारा त्रिपाल की चादर टाँग कर छाया कर दिया जाता हैं जिसके नीचे चूजों को पाला जाता हैं। अनेक घरों में त्रिपाल के टंकी में एजोला उगाया जाता है। इस नील हरित शैवाल का उपयोग पौधों में खाद तथा मुर्गी के भोजन के लिए किया जाता है। कीटों के नियंत्रण हेतु कुछ जैविक कीटनाशक जैसे तम्बाकू का घोल, नीम बीज का घोल, नीम तेल – लहसुन का घोल के साथ साबुन के घोल का प्रयोग भी किया जाता है। बहुत से परिवारों ने यह अनुभव किया है कि छत पर सूर्य की रोशनी लम्बी अवधि तक रहने के कारण कीटों की समस्या कभी गम्भीर नहीं होने पाती।

शहरी ग्रामीण सम्पर्क

ग्रामीण क्षेत्रों के किसान खपत की प्रवृति में परिवर्तन तथा प्राथमिकता के बारे में जागरूक होते हैं। वह जानते हैं कि छत की खेती की लोकप्रियता स्वास्थ्य के कारण है, किन्तु वह इसे अपने उत्पादन एवं जीविका के प्रति तत्काल खतरा नहीं मानते हैं। कुछ किसान एवं किसान समूह ने रसायनों के प्रयोग को कम करना प्रारम्भ कर दिया है तथा कृषि विभाग के प्रसार कार्यकर्ताओं से

फोटो : लेखक

त्रिवेन्द्रम में छत पर सब्ज़ियाँ : स्थान प्रबन्धन का उदाहरण

शेष भाग पृष्ठ 8 पर.....

कीटनाशक का स्वास्थ्य पर प्रभाव : एक अध्ययन

पी० इन्दिरा देवी*

Healthy Produce, People and Environment
LEISA INDIA, Sept. 2007, Vol. 9, No.3, Pg. # 28

अधिकांश विकासशील देशों में कीटनाशकों का प्रयोग, गैर वैज्ञानिक एवं अनियंत्रित ढंग से हो रहा है, जिससे पारिस्थितिकीय तंत्र एवं मानव स्वास्थ्य को गंभीर क्षति पहुँच रही है। कीटनाशकों के हानि (स्वास्थ्य पर पड़ने वाले कुप्रभाव) और लाभ (फसल उत्पादन से आर्थिक लाभ) का विवरण पूरे विश्व में प्रकाशित हुआ है; इसके बावजूद बहुत से विकासशील देशों में कीटनाशकों के प्रयोग सम्बन्धी नीति और नियन्त्रण आज भी सम्भव नहीं हो पाया है। फलस्वरूप कीटनाशकों का अन्धाधुंध प्रयोग हो रहा है।

कीटनाशकों के प्रयोग विधि एवं स्वास्थ्य पर पड़ने वाले कुप्रभाव की जानकारी के लिए केरल के समुद्र तट पर स्थित कुट्टानड क्षेत्र जो केरल का धान का कटोरा कहलाता है, को अध्ययन के लिए चयनित किया गया। ग्रीष्मकालीन ऋतु में यहाँ मात्र एक ही फसल धान की बुआई होती है। इस अध्ययन हेतु दो क्षेत्रों एक, जहाँ कीटनाशकों का प्रयोग होता था तथा दूसरा, जिसमें कीटनाशक प्रयोग होता था, का चयन किया गया। अध्ययन के परिणाम निम्न रहे–

जागरूकता का अभाव

कीटनाशकों के विषाक्तता स्तर के बारे में जागरूकता, उनसे स्वास्थ्य पर पड़ने वाला प्रभाव तथा उसके परिणामी व्यवहार को आधार मानकर निर्णय लिया गया कि कीटनाशकों का प्रयोग किस सीमा तक नकारात्मक रहा है।

अध्ययन से ज्ञात हुआ कि अधिकांश प्रयोगकर्ताओं में कीटनाशकों के विषाक्तता स्तर पर जागरूकता का अभाव था। वहीं कुछ को जानकारी थी कि बाजार में विभिन्न स्तर, जिसमें सुरक्षित स्तर से लेकर अत्यधिक जहरीले स्तर के कीटनाशक उपलब्ध हैं, पर बहुत कम लोगों द्वारा निर्देशों का पालन किया जाता था। मात्र एक तिहाई प्रयोगकर्ता ही पैकेट पर लिखे निर्देशों को स्वयं अथवा किसी के सहयोग से पढ़ते थे। करीब चार में से तीन प्रयोगकर्ता द्वारा अत्यधिक जहरीले कीटनाशकों का छिड़काव किया जाता था किन्तु वह यह सोचते थे कि वे कम/सामान्य जहरीले रसायनों का प्रयोग कर रहे हैं। बहुत से प्रयोगकर्ता रंग के आधार पर विषाक्तता स्तर को समझने में असमर्थ थे क्योंकि दुर्भाग्य से उनको रंगों द्वारा विषाक्तता स्तर की भी जानकारी नहीं थी। ऐसा समझा जाता है कि प्रक्षेत्र प्रशिक्षण का आयोजन एजेन्सी द्वारा मुख्यतः किसानों के लिए किया जाता था, परन्तु कीटनाशकों के छिड़काव के समय अधिकांश किसान (79 प्रतिशत) प्रक्षेत्र से दूर होते थे, जिससे वह उपरोक्त के बारे में समझ विकसित करने में असमर्थ थे।

कीटनाशक प्रयोग के समय जिन छोटे–छोटे सुरक्षात्मक उपकरणों का प्रयोग किया जाना चाहिए उनमें फिल्टर युक्त चेहरे का नकाब, चश्मा, सिर का आवरण, रबड़ के दस्ताने, पूरी आस्तीन का शर्ट, फुल पैन्ट, जूते आदि होते हैं परन्तु इन उपकरणों के कीमती होने के साथ असुविधाजनक एवं प्रयोगकर्ता के आलस्य के कारण, इनका प्रयोग नहीं किया जाता था। अधिकांश प्रयोगकर्ताओं को छिड़काव के बाद आँखों में खुजली होती थी, किन्तु वह अपने आँखों की सुरक्षा के लिए कुछ भी प्रयोग नहीं करते थे । वैसे अधिकांश प्रयोगकर्ता छिड़काव के समय पूरी आस्तीन के शर्ट के प्रयोग के साथ ही कुछ अपनी आँख के ऊपर कपड़े का एक टुकड़ा भी लपेट लेते थे।

अनावरण (खुलेपन) से स्वास्थ्य को क्षति

अध्ययन में पाया गया कि अल्प अवधि की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं, जो खुलेपन (बिना शरीर, सिर आदि को ढंके) के कारण कुछ घण्टों/दिनों में ही परिलक्षित हो जाती थीं, को प्रयोगकर्ताओं द्वारा गम्भीरता से नहीं लिया जाता था, जिससे वह लम्बी अवधि के दुष्प्रभाव को घातक रूप में झेलते थे। यह भी आश्चर्यजनक ही है कि एक चौथाई प्रयोगकर्ताओं का मानना था कि कीटनाशकों का स्वास्थ्य पर पड़ने वाला प्रंतिकूल प्रभाव लम्बे समय नहीं रहता है। जबकि चार में से तीन प्रयोगकर्ताओं को कीटनाशक छिड़काव के तत्काल बाद कम से कम एक बार भारी स्वास्थ्य हानि का सामना करना पड़ा था, जिससे उन्हें चिकित्सकीय सहायता के रूप में अस्पताल में दाखिल भी करना पड़ा था।

अधिकतर प्रयोगकर्ताओं को कीटनाशक प्रयोग के दौरान ही चिकित्सकीय मदद की जरूरत पड़ती थी, जिसका मुख्य कारण, स्वास्थ्य सम्बन्धी दुष्प्रभाव के प्रति जागरूकता का अभाव अथवा अत्यधिक जहरीले रसायनों का कई बार लापरवाही के साथ प्रयोग, का दुष्परिणाम हो सकता है।

प्रयोगकर्ताओं के अनावरण से स्वास्थ्य पर तत्काल पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन प्रत्यक्ष अवलोकन एवं एक प्रक्षेत्र डायरी बनाकर लेखाजोखा द्वारा किया गया, जिसमें मुख्यतः चर्म सम्बन्धी समस्याएँ, खुजली, आँख में जलन तथा दृष्टि सम्बन्धी समस्याएं निकल कर आई। इन समस्याओं को प्रयोगकर्ताओं के द्वारा हल्के में लिया जाता था और आवश्यकता पड़ने पर इनका उपचार स्वयं घरेलू जड़ी बूटी आदि द्वारा ही कर लिया जाता था, यद्यपि, जी मिचलाना, चक्कर आना, सांस सम्बन्धी समस्या, निर्जलन, उल्टी, ऐंठन, मरोड़, अतिसार, दस्त आदि के लक्षण तुलनात्मक रूप से कम ही थे फिर भी प्रायः इनके लिए औपचारिक चिकित्सकीय सलाह ली जाती थी क्योंकि ये घटनाएं जीवन के लिए बहुत हानिकारक होती थीं।

कीटनाशकों का असुरक्षित प्रयोग अकल्याणकारी

कीटनाशकों के प्रयोग से होने वाली आर्थिक क्षति का आकलन, बीमारी पर होने वाले व्यय को आधार मानकर किया गया यह आंकलन विभिन्न प्रकार के चिकित्सकीय व्यय तथा मजदूरों के

बीमार होने के कारण मजदूरी में होने वाली हानि को सम्मिलित कर किया गया। खेतिहर मजदूरों पर बीमारी में होने वाला व्यय एवं प्रयोगकर्ताओं, जब वे कीटनाशक का छिड़काव नहीं करते है, उस दौरान, उनमें होने वाली बीमारी पर व्यय दोनों ही समान रू0 3/– प्रतिदिन पाया गया। जबकि छिडकाव के कारण होने वाली बीमारी पर होने वाला व्यय रू0 41/– प्रतिदिन आता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि छिड़काव करने के कारण होने वाला प्रतिदिन का व्यय रू0 38/– ही है जोकि एक मजदूर के प्रतिदिन की मजदूरी का लगभग एक चौथाई (24 प्रतिशत) होता है। यदि हम यह मान लें कि एक प्रयोगकर्ता जो कि वर्ष में औसतन 42 दिन कीटनाशक छिड़काव का कार्य करता है, तो उसे औसतन रू0 1596/– (अमेरिकी डालर) की हानि उठानी पड़ेगी।

केरल में लगभग 110,000 मजदूर कीटनाशक छिड़काव का कार्य करते हैं, अर्थात इस क्षेत्र में कीटनाशकों के प्रयोग से प्रतिवर्ष रू0 180 लाख की हानि होती है जोकि उनके द्वारा महसूस किये गये रोग के लक्षणों पर ही आधारित है। ध्यातब्य हो कि यह मूल्य मितव्ययता के आधार पर आकलित किया गया है। इसमें लम्बी अवधि के अन्तराल पर होने वाली बीमारी के इलाज पर होने वाले व्यय तथा स्वास्थ्य की देखभाल सम्बन्धी सार्वजनिक व्यय को शामिल नहीं किया गया है।

इससे यह स्पष्ट है कि कीटनाशकों के प्रयोग की मात्रा कम होने से इसमें लगे मजदूरों के स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यय में भी महत्वपूर्ण कमी आ सकती है। उदाहरण स्वरूप कीटनाशकों की मात्रा में केवल 25 प्रतिशत की कमी ही प्रयोगकर्ताओं के 24 प्रतिशत व्यय को बचाता है। इस प्रकार 24 प्रतिशत की महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त हो जाती है।

इसे देखते हुए, सबसे महत्वपूर्ण यह है कि सुरक्षित पर्यावरण सम्बन्धी कृषि विकल्पों के बारे में भी लोगों को बताया जाय साथ ही मजदूरों के हित की योजनाएं तैयार करना, जागरूकता सम्बन्धी कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना भी अतिआवश्यक है, जिससे कि कीटनाशकों के सुरक्षित प्रयोग, उनके रख–रखाव, सुरक्षात्मक उपकरणों के प्रयोग, कीटनाशकों के दुष्प्रभाव से सम्बन्धित जानकारियाँ आदि के सम्बन्ध में उनमें जागरूकता पैदा हो सके और नुकसान कम हो।

■

* सहायक प्राध्यापक,
कृषि आर्थिकी विभाग, उद्यान महाविद्यालय, केरल
कृषि विश्वविद्यालय, केरल, भारत
ईमेल : induananth@gmail.com
फैक्स : 0914872370019

आभार :

यह लेख सन् 2004–05 में ''साउथ एशियन नटवर्क फार डेवलपमेन्ट एण्ड एनवायरन्मेन्टल इकोनोमिक्स (SANDEE) द्वारा सहायतित एक अध्ययन से लिया गया है। SANDEE को इस अध्ययन हेतु आर्थिक, तकनीकी एवं भावनात्मक सहयोग के लिए हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

पृष्ठ 6 का शेष.....

जैविक खेती की विधियों के बारे में सीखना शुरू कर दिया है। केरल में जैविक सब्ज़ियों का प्रमाणीकरण प्रचलन में नहीं है, फिर भी किसान अपने उत्पाद को जैविक उत्पाद के रूप में बेच रहे हैं यद्यपि वह प्रमाणित नहीं होता है। शहरी उत्पादक अपनी आवश्यकता की सभी सब्ज़ियों या फलों को तो छत पर उगा नहींसकते, इसलिए कुछ सब्ज़ियों एवं फलों को उन्हें खरीदना पड़ता है। किन्तु शहरी उत्पादक जैविक उत्पाद हेतु जागरूक हो गये हैं। उदाहरण के तौर पर बहुत सुडौल केला, जिसके उत्पादन में रसायनिक उर्वरक तथा कीटनाशकों का प्रयोग होता है, को शहरी उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों के द्वारा पसन्द नहीं किया जाता है। इसके अतिरिक्त शहरी उत्पादक सरकारी एजेन्सी की अपेक्षा ग्रामीण किसानों से सब्ज़ियों के बीज, सूखा गोबर, मुर्गी या बकरी की खाद खरीदना पसन्द करते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि पीढ़ियों से अपनाई जाने वाली पद्धति एवं बीज बेहतर ही होगी। ग्रामीण किसान अपने इन उत्पादों की बिक्री से प्रसन्न होते हैं।

लाभ

''शहर में गाँव'' योजना के परिणामों के पुनः परीक्षण से यह जानकारी होती है कि छत पर खेती करने वालों को धन की बचत के साथ ही ताजी सब्ज़ियाँ एवं अण्डे प्राप्त हो जाते हैं, जो बाजार में बिकने वाली सब्ज़ियों की तुलना में पौष्टिक एवं रसायन अवशेष मुक्त होते हैं। एक अनुमान के अनुसार इससे वर्षभर में 1000 टन से भी अधिक सब्ज़ियों को पैदा किया जा रहा है तथा दूसरे अनुमान के अनुसार यदि 40 वर्ग मीटर के छत पर 5000/– की लागत से सब्ज़ी उत्पादन किया जाय तो उससे उत्पादित सब्ज़ियों का मूल्य रू0 40000 /– से भी अधिक हो सकता है। छत की खेती से प्रेरित हो कर त्रिवेन्द्रम के स्थानीय अधिकारियों ने इस वर्ष एक नई योजना लागू किया है। जिसमें निःशुल्क किट में सब्ज़ियों के बीज, जैविक खाद, तथा केले का दो अदद पौधा स्कूल के 20 छात्रों को दिया जायेगा। इसका उद्देश्य छत की खेती को बच्चों की शिक्षा में शामिल करना है जिससे अभिभावकों को भी प्रेरणा मिल सके। साथ ही अधिकारियों द्वारा इसके अन्य लाभ भी बताये गये कि व्यस्त दिनचर्या एवं एक स्थान पर बैठकर कार्य करने के कारण बहुत से प्रौढ़ एवं बूढ़े लोगो को शहर मे अनेक प्रकार की स्वास्थ समस्यायें जैसे मोटापा, उच्च रक्तचाप, मधुमेह या अधिक कोलेस्ट्राल स्तर पाया जाना है, परन्तु छत पर खेती करने से उनके द्वारा प्रतिदिन कुछ व्यायाम हो जाने से इन बीमारियों की रोकथाम हो सकती है। इसके साथ ही घर से निकलने वाले व्यर्थ पदार्थ का उपयोग वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने में हो जाता है। श्री पिल्लई बताते है कि उनके द्वारा सब्ज़ियों का उत्पादन करने से वह कुछ ऐसी प्रजाति की सब्ज़ियों को खा सकते है, जो बाजार में उपलब्ध नहीं हो पाती है। उदाहरण के तौर पर कुन्दरू (जो मधुमेह को नियंत्रित करता है और सफेद कद्दू जो उच्च रक्तचाप को कम करता हैं) श्री पिल्लई के अनुसार अपने हाथ से पैदा किये गये उत्पादों के खाने के स्वाद एवं संतुष्टि को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

■

* कृषि अधिकारी, फार्म इनफारमेशन ब्यूरो, कृषि विभाग, केरल सरकार
''अंजना'', टी०सी०–25/3178–1,
वनचीयूर, त्रिवेन्द्रम– 695035, केरल, भारत
ईमेल : unni_krishnan1@hotmail.com

सार्वजनिक-निजी भागीदारी से लाभ प्राप्त करना

योगेश सावन्त* एवं मेघराज सपाटे**

Towards Fairer Trade
LEISA INDIA, March 2008, Vol. 10, No 1, Pg. # 26

आज, सभी क्षेत्रों में जैविक खेती के लाभ के साथ–साथ खाद्य पदार्थों में कृषि रसायनों के अवशेष की मौजूदगी से नुकसान की जानकारी सार्वजनिक हो चुकी है साथ ही जैविक उत्पादों हेतु अनेक क्षेत्र के उपभोक्ताओं द्वारा अतिरिक्त मूल्य की सहमति तथा रसायनों के प्रयोग से कृषि स्थायित्व पर पड़ने वाले कुप्रभाव के कारण बहुत से किसान जैविक खेती की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इनकी संख्या में लगातार वृद्धि द्वारा यह स्पष्ट भी होता है। हालांकि, आज भी उत्पादनकर्ता तथा खरीददारों के बीच सीधा जुड़ाव न होने से जैविक खेती करने वाले कुछ किसान जैविक उत्पादों का उचित मूल्य नहीं पा रहे हैं। इसका मुख्य कारण है– प्रमाणीकरण की जानकारी, वित्तीय संसाधन एवं सुनिश्चित बाज़ार का अभाव। भारत में पारम्परिक बाज़ार को खुदरा श्रृंखलाओं की आपूर्ति हेतु कई नई समन्वित एवं प्रभावशाली व्यवस्थाएं आ रही हैं।

इस लेख में गुजरात के वन्सदा, कप्रड़ा तथा धर्मपुर विकासखण्डों में बायफ डेवलपमेन्ट रिसर्च फाउण्डेशन के द्वारा छोटे एवं जैविक उत्पादों के क्रेता समूहों के बीच सम्पर्क स्थापित कराने में किये गये प्रयासों के नतीजे को व्यक्त किया गया है। यहाँ आदिवासी समुदाय के लोग अधिक संख्या में निवास करते हैं। यहाँ का भूभाग पहाड़ी है तथा अधिक वर्षा होने के कारण मृदा एवं जल क्षरण अधिक होता है। मृदा क्षरण तथा जल के अभाव से लगातार घटते कृषि उत्पादकता ने यहाँ के निवासियों को आजीविका की तलाश में दूसरे स्थानों पर जाकर बसने के लिए मजबूर कर दिया है। वर्षा आधारित कृषि होने से यहाँ की मुख्य फसल धान एवं मडुआ हैं।

हस्तक्षेप

भुखमरी, कुपोषण तथा पलायन जैसी समस्याओं को रोकने व आदिवासियों के विकास के लिए बायफ ने सहभागी परिवारों के जीवन स्तर को सुधारने एवं आजीविका सुनिश्चित कराने के उद्देश्य से एक व्यापक योजना लागू किया। इस योजना के सहभागियों ने अपने 0.4 हेक्टेयर भूमि पर सूखा सहन करने वाले फल के प्रजाति जैसे आम, काजू आदि को लगाया। प्रारम्भ के दिनों में पोषण तथा कीट प्रबन्धन के समन्वित तरीकों एवं जंगल से उपलब्ध वनस्पतियों के पुनर्चक्रण के लिए ''वर्मीकम्पोस्टिंग'', नाडेप जैसी विधियों को अपनाया गया। विगत 15 वर्षों में 2000 से अधिक आदिवासियों ने लगभग 76000 हेक्टेयर बेकार भूमि पर बाग लगाया। उत्पादों के प्रसंस्करण एवं व्यापार के लिए ''वसुन्धरा'' नामक सहकारी समिति गठित की गयी। जैविक खाद के निरन्तर प्रयोग एवं विभिन्न मृदा संरक्षण विधियों को अपनाने से मृदा उर्वरता में सुधार हुआ। जैविक विधि से उत्पादित आम के प्रमाणीकरण हेतु आर्थिक स्रोत की उपलब्धता एवं उचित मूल्य हेतु बाज़ार सुनिश्चित करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य था।

जैविक उत्पादन के लिए भागीदारी

भारत की निजी क्षेत्र की एक कम्पनी, वर्ष 2005–06 में विविध व्यापारिक गतिविधियों व खाद्य प्रसंस्करण हेतु आई0टी0सी0 के साथ सहभागी रूप में आयी। आई0टी0सी0 को प्रसंस्कृत खाद्य तैयार करने के लिए जैविक उत्पादित आम की आवश्यकता थी इसके आपूर्ति एवं प्रमाणीकरण के लिए बायफ ने वसुन्धरा एवं आई0टी0सी0 के बीच पारस्परिक अनुबन्ध कराना सुगम बनाया। आई0टी0सी0 ने अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठित प्रमाणीकरण एजेन्सी एस0के0ए0एल0 से बागों के प्रमाणीकरण कराने के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई। बायफ ने मानवीकरण एवं अधिकतम उत्पादन सम्बन्धी जानकारियों के प्रसार के साथ ही ग्राम स्तरीय संस्थाओं को वसुन्धरा अभिलेखों के रखरखाव एवं प्रबन्धन के सम्बन्ध में भी प्रशिक्षित किया फलस्वरूप किसानों को अब अपने बाग पर ही स्थानीय बाज़ार से लगभग 20 प्रतिशत अधिक मूल्य प्राप्त हो जाता हैं साथ ही उत्पादों को बाज़ार ले जाने का खर्च व मेहनत नहीं करना पड़ता जिससे जैविक प्रमाणीकरण बागों की संख्या में वृद्धि हो रही है एवं वर्ष 2008–09 में संख्या 3500 तक पहुँचने की संभावना हैं।

निष्कर्ष

इस भागीदारी के रणनीति के परिणाम स्वरूप किसानों के पास अपने उत्पादों के लिए सुनिश्चित बाज़ार मिला, आई0टी0सी0 को समन्वय सम्बधी धनराशि कम लगानी पड़ी। साथ ही आम की मात्रा एवं गुणवत्ता सुनिश्चित होने के कारण बायफ को भी हजारों छोटे आदिवासी किसानों के महत्व को बढ़ाने तथा कृषि स्थायित्व एवं सुरक्षित पर्यावरण को प्रोत्साहित करने जैसे उदेश्यों की पूर्ति में सहायता प्राप्त हुई है।

एक स्थिति विशेष (वर्ष 2007-08) में तुलनात्मक आमद

विवरण	पारम्परिक आपूर्ति श्रृंखला में (रू0 / किग्रा0)	सार्वजनिक–निजी भागीदारी में (रू0 / किग्रा0)
1. आम का मूल्य	15.00	18.00
2. परिवहन व्यय (किसानों के द्वारा)	0.25	–
3. व्यापारियों को कमीशन (किसानों को शुद्ध बिक्री दर 1–2–3)	1.20	–

औसतन एक किसान लगभग 650 किग्रा0 आम बेचता है। इस प्रकार जहाँ पारम्परिक पद्धति में उसे मात्र रू0 8807 प्राप्त होगा वहीं प्रमाणीकरण के उपरान्त उसे रू0 11,700 /– प्राप्त होगा

■

* बायफ डेवलेपमेन्ट एण्ड रिसर्च फाउण्डेशन,
डा० मनीभाई देसाई नगर, बरजे,
पापुलर नगर के पीछे, पूने- 411058
फोन : 020-25231661
ईमेल : ygsawant@baif.org.in

सीमान्त कृषक हेतु गृहवाटिका

नेपाल में विकास परियोजनाएं, प्रायः नीति विषयक जैसे अधिकार प्राप्ति पर आधारित, तथा जीविका को कम महत्व देने वाले विषयों पर ही केन्द्रित होने के कारण निर्धन व्यक्तियों पर इसका तात्कालिक प्रभाव नहीं दिखता। यह लेख स्वयं सेवी संस्था के प्रयास को वर्णित करता है कि ग्रामीण निवासियों को गृहवाटिका की मदद से ज़मींदारी तथा बाज़ार पर उनकी निर्भरता को कैसे कम किया जा सकता है।

फोटो : रोज़ी सवाल

सघन गृहवाटिका से नेपाली महिलाओं की आजीविका में सुधार

रोज़ी सुवाल*, विमल राज रेगमी, भुवन स्थापित*** एवं अर्जिना श्रेष्ठ******

Farming and Social Inclusion
LEISA INDIA, Sept. 2008, Vol. 10, No 3, Pg. # 24

गृहवाटिका, कमजोर वर्ग के लिए आजीविका का एक विकल्प है इसके अंतर्गत घर के आस पास उपलब्ध भूमि पर सब्ज़ियों, फलों, चारा तथा औषधीय पौधों के साथ ही पशुपालन, मुर्गीपालन, मत्स्य पालन तथा मधुमक्खी पालन का कार्य भी किया जा सकता है। गृहवाटिका में लोग दुर्लभ प्रजातियों को घरेलू तौर पर प्रयोग कर उनके बीज एवं पौधों का आदान–प्रदान भी कर सकते हैं। वाटिका का आकार 20 से 500 वर्ग मीटर तक हो सकता है। स्थानीय पशुधन की मदद से तैयार खाद तथा घर का श्रम ही गृहवाटिका उत्पादन के लिए पर्याप्त होता है। लगभग तीन चौथाई ऐसे घर जो दलित और गरीबों के कारण हैं, उनके पास ऐसी भूमि होती है, जिस पर गृहवाटिका बनायी जा सकती है और पोषण हेतु पर्याप्त उत्पादन किया जा सकता है। गृहवाटिका का सकारात्मक पहलू यह है कि इसमें भूस्वामियों तथा स्थानीय बाज़ार का भी हस्तक्षेप नहीं रहता है। उदाहरणार्थ थोड़ा सा श्रम एवं तकनीकी समर्थन ने एक महिला की स्थिति को ऐसा परिवर्तित किया जिससे वह प्राप्तकर्ता से पूर्तिकर्ता हो गई अर्थात् जिसे पहले सब्ज़ियों के लिए दूसरों के सामने हाथ पसारना पड़ता था आज वह गृहवाटिका की मदद से अन्य लोगों को सब्जियाँ देने में सक्षम है।

वंचित समूहों को लाभित करना

एक बार विकसित गृहवाटिका देखने का सुअवसर प्राप्त होने पर लोग पौष्टिक एवं अच्छी गृहवाटिका विकसित करने के प्रति उत्सुक हो जाते हैं। वर्ष 2002 में नेपाल सरकार की बायोडायवर्सटी इन्टरनेशनल तथा स्विस विकास निगम के साथ नेपाली स्वयं सेवी संस्था (लोकल इनीशियेटिव फार बायोडायवर्सिटी, रिसर्च एण्ड डेवलेपमेन्ट (LI-BIRD) द्वारा जीविकोपार्जन में गृहवाटिका की भूमिका पर अनुसंधान प्रारम्भ किया गया जिसके अन्तर्गत वंचित समूह व उसके वंचित होने के कारणों का गहन अध्ययन किया गया। उदाहरणार्थ ऐसे समूहों में महिलाएं संस्कृत नहीं बोलने वाले लोग, गैर हिन्दू तथा निम्नजाति के या अछूत(दलित) थे साथ ही इस समूह में गृहवाटिका द्वारा उत्पादन संबंधी जानकारी व आत्मविश्वास की कमी भी पायी गयी। अध्ययन में अन्य जो कारण निकल कर सामने आये, वे निम्न थे– महिलाएं घरेलू दायित्वों के कारण घर छोड़ने में असमर्थ थीं, फलस्वरूप वे विकास सम्बन्धी कार्यो में अपनी सहभागिता सुनिश्चित करने के प्रति अनिच्छुक भी थीं एवं विकास के प्रयासों में दलितों की सहभागिता का न मिल पाना क्योंकि समुदाय द्वारा दलितों को बहुमूल्य सदस्य के रूप में नहीं देखा जाता था आदि।

तीन वर्षों के सक्रिय अनुसंधान के बाद इस प्रकार के कठिनाइयों को कम करने के लिए एक योजना की रूपरेखा तैयार की गई। इस योजना के प्रारम्भिक चरण में ऐसे व्यक्ति, जो विकास सम्बन्धी कार्यों में भाग नहीं लेते थे, उनकी सहभागिता सुनिश्चित कराना था जो कि अत्यन्त कठिन कार्य था। इस कार्य को पूर्ण करने हेतु घर–घर जाने की योजना बनाई गई जिसके अंतर्गत समूह के सदस्यों के घर जाकर उनकी गृह वाटिका में विभिन्न प्रजातियों के सब्ज़ियों के पौधों को लगाना शामिल था। धीरे–धीरे गृहवाटिका से प्राप्त होने वाले लाभ को देखते हुए शीघ्र ही अन्य लोगों द्वारा सहभागिता सुनिश्चित करने में भी काफी मदद मिली।

महिला एवं मिश्रित समूह

योजना अंतर्गत गृहवाटिका विकसित करने हेतु समूह गठित किये गये। कुछ समूह मात्र उन महिलाओं के बनाये गये जिनके घरों के पुरूष लम्बी अवधि के लिए बाहर ही रहते हैं तथा मुख्य रूप से नगदी फसलों की बिक्री कर प्राप्त आय पर नियन्त्रण रखते थे। इन महिलाओं के कार्य क्षेत्र में गृहवाटिका को सम्मिलित किया गया क्योंकि उनकी जरूरी गतिविधियों जैसे बच्चों की देखभाल, खाना बनाने में यह सहयोगी हैं। इस प्रकार गृहवाटिका से होने वाली आय पर प्रायः महिलाओं का ही नियंत्रण रहता है।

मिश्रित समूह में किसान एक दूसरे से सीखने के साथ–साथ ज्ञान एवं अनुभव का आदान–प्रदान करते हैं। समूह के मापदण्ड एवं योजनाओं की रूपरेखा को ऐसे तैयार किया गया कि वह सामाजिक सहभागिता की क्रिया में सहयोग प्रदान करने वाली हो। समूह की बैठक नियमित समय पर होती है, जिसमें कमजोर सदस्यों को गृहवाटिका हेतु अनुदानित पौध सामग्री उपलब्ध कराई जाती है। निर्धन राशि निधि की स्थापना उनके आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए किया गया, जिससे समूह के लोग आयजनक गतिविधियों को करके लाभ प्राप्त कर सकें। सर्वश्रेष्ठ समूह (लोगों द्वारा मान्यता प्राप्त), समुदाय के अन्य सदस्यों के लिए ''सीड बैंक'' तथा अन्य जानकारी

उपलब्ध कराने का कार्य एक विशेष रणनीति के तहत् करते हैं ताकि इस रणनीति से उच्च जाति के व्यक्तियों द्वारा निम्न जाति के व्यक्तियों से भेदभाव न बरता जा सकें। इस प्रकार गृह वाटिका सामुदायिक स्तर पर सामाजिक संबंधों को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मात्र गृहवाटिका ही पर्याप्त नहीं !

वंचित समूहों के पास पर्याप्त भूभाग नहीं होता है जिसमें मुख्य फसलों को उगाया जा सके किन्तु अधिकांश के पास छोटे भूभाग अवश्य होते है जहाँ वह सघन खेती करके लाभ प्राप्त कर सकते हैं। गृहवाटिका वैसे तो वंचित समूह के कई समस्याओं का निदान कर सकती है। फिर भी उनके अधिकारों से संबंधित मुद्दों की बात करें तो वहाँ एक ऐसे तंत्र की आवश्यकता होगी, जो सीधे तौर पर उनकी समस्याओं को प्रस्तावित कर सकें।

अपनी आय स्वयं अर्जित करना

सुमित्रा नेपाली, हरदीनेटा गाँव, गुल्मी, की एक विधवा है। उसकी एक पुत्री एवं दो पुत्र हैं। परियोजना के पूर्व सुमित्रा दूसरों की भूमि पर कार्य कर अनियमित आय अर्जित करती थी तथा उसके पुत्र भी कुछ पैसा उसे भेजते थे फिर भी यह निर्वहन हेतु पर्याप्त नहीं था। सुमित्रा बड़ी मुश्किल से रात का भोजन पा सकती थी। इन सबके साथ ही आय के श्रोत के रूप में सुमित्रा के पास कुछ सूअर भी थे परन्तु इनका पेट पालने में भी सुमित्रा असमर्थ थी। इस परिवार के पास भूमि का एक छोटा टुकड़ा (250 वर्ग मी) घर के पास ही उपलब्ध था जो वर्ष के अधिकांश दिनों में खाली ही पड़ा रहता था। परियोजना के बाद अपने गाँव में सुमित्रा पौधशाला बनाने वाली पहली महिला बनी और इस पहचान के बाद लोग सब्जियों की नर्सरी देखने और उगाने के बारे में सीखने के लिए इनके पास आते हैं। वह अनेक प्रकार के पौधो को अपने गृहवाटिका में उगाती हैं जैसे सुपाड़ी, अमरूद, पत्तागोभी, टमाटर, मूली, गाजर, सेम लहसुन तथा सौंफ आदि। इन्होंने नर्सरी तथा सब्जी बेच कर एक सीजन में रू0 6000 (लगभग 80 यू.एस. डालर) की आय अर्जित किया है एवं उसने पुनः सूअर पालना प्रारम्भ कर दिया है जिनका पालन पोषण भी गृहवाटिका एवं रसोई से बचे–खुचे पदार्थों/अवशेषों से ही करा पाने में सुमित्रा अब अपने को समर्थ पाती है।

■

*, **, **** लोकल इनिशियेटिव फार वाय डायवर्ससीटी रिसर्च एण्ड डेवलेपमेंट
एल०आई०–बी०आई०आर०डी० पो०बा० # 324, गैरहापट्ट,
पोखरा कस्की, नेपाल
ईमेल : rsuwal@libird.org:http//www.libird.org

*** डावर्सिटी फार भाईवलीहुड प्रोग्राम, बायोडावर्सिटी इण्टर नेशनल
3/10, धर्मशाला, बुद्धा मार्ग, नादीपुर पट्टन पोखरा–3, नेपाल
ईमेल : b.sthapit@cgiar.org

ज्ञान प्रबन्धन पर नागर समाज संगठनों का क्षमता वर्धन

प्रगतिशील संस्थाएं, क्षेत्रीय ज्ञान बांटने में सम्मिलित हैं। यद्यपि कि यह ज्ञान पूरी तरह से प्रचलित नहीं हो पाता है। संस्थाओं के अन्दर आपसी समझ को पैदा करना, योजना तैयार करना तथा उसे जनता तक पहुंचाना मुश्किल हो जाता है। इसके लिए उचित प्रबन्धन, सूचना कार्यक्रम एवं उचित संचार व्यवस्था की आवश्यकता है।

लीज़ा इण्डिया टीम द्वारा सामाजिक समुदायों में ज्ञान प्रबन्धन के कार्यक्रम चलाना नया प्रयास है, जो कि अल्पकालिक कार्यशाला एवं दीर्घकालिक कार्यक्रमों द्वारा संचालित होता है। यह दस्तावेज़ 22–26 अप्रैल, 2008 में नागर समाज संगठनों द्वारा चलायी गयी पहली कार्यशाला का उदाहरण है।

यदि व्यक्तिगत रूप से पत्रिका (अंग्रेज़ी में) पाने हेतु इच्छुक हों, तो कृपया संपर्क करें

के.वी.एस. प्रसाद / टी.एम. राधा, लीज़ा इण्डिया,
ए.एम.ई फाउण्डेशन
नं0 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक, 3rd स्टेज,
बनशंकरी, बैंग्लोर–560085
फोनः +91-80-266995 12, 26699522
फैक्सः +91-080-26699410
ईमेलः leisaindia@yahoo.co.in
वेबसाइट : http://india.leisa.info

लीज़ा पर ज्ञानवर्धन

नई सीडी मूल्य : रू0 50.00
लीज़ा इण्डिया (1999–2005)
लीज़ा वैश्विक (1984–2006)
और लीज़ा के सभी क्षेत्रीय संपादन

इस CD Rom में पिछले दो दशकों में इलिया में प्रकाशित सारे समाचार पत्र एवं लीज़ा पत्रिका है। प्रतियों (अंग्रेजी में) के लिए ए.एम.ई. फाउण्डेशन से सम्पर्क करें।

ए.एम.ई फाउण्डेशन
नं0 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज, 2nd ब्लाक, 3rd
स्टेज, बनशंकरी, बैंग्लोर–560085
फोनः +91-80-26699512, 26699522
फैक्सः +91-080-26699410
ईमेलः leisaindia@yahoo.co.in
वेबसाइट : http.//india.leisa.info

बाज़ार जुड़ाव केन्द्र द्वारा उन्नति

एनालनजीरोफो क्षेत्र के पूर्वी मदगास्कर में कृषि उत्पादों की एक व्यापक श्रेणी मिलती है जो अपने आप में अनुपम है। यहाँ स्थायी तौर पर लहसुन, लीची, सब्ज़ियाँ, चावल और शहद का उत्पादन होता है जिससे इस क्षेत्र की सम्पन्नता का पता चलता है। यह क्षेत्र इतना सम्पन्न होने के बावजूद भी यहाँ के गरीब किसानों को बहुत सारी समस्याओं के साथ जूझना पड़ता है, जिसमें मुख्य रूप से उत्पादों के विपणन हेतु स्थायी साझीदारों को प्राप्त करना है। किसानों और मधुमक्खीपालकों की इन्हीं समस्याओं के समाधान हेतु 'मार्केट एक्सेस सेन्टर' (बाज़ार जुड़ाव केन्द्र) बनाये जा रहे हैं।

बेनॉइट थेरी* एवं इमेलिन श्नीडर**

Farmer as Entreprenurs
LEISA INDIA, June 2009, Vol. 11, No 2, Pg. # 26

उच्च कृषि सामर्थ्य और निवास की कठिन परिस्थितियाँ, एनालनजीरोफो क्षेत्र के किसानों हेतु विरोधाभासी स्थिति हैं, जिसका कारण ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों एवं तकनीकी ज्ञान की कमी, सीमित निवेश एवं विभिन्न उपयोगी श्रृंखलाओं के व्यवसायीकरण में बाधा आदि है। उत्पादकों को व्यापारिक लागत का निर्वहन करने में कठिनाई होती है क्योंकि ये मँहगे एवं स्थानीय स्तर पर उपलब्ध भी नहीं होते। इसके अतिरिक्त मौसम आधारित कृषि के कारण किसान की आय निर्धारित नहीं हो पाती है। क्षेत्रीय स्तर पर फसल की कटाई एवं भण्डारण की सुविधाओं के न होने से किसानों द्वारा इनको संरक्षित नहीं किया जा सकता जिससे उत्पादकों द्वारा माँग की पूर्ति नहीं हो पाती परिणामस्वरूप किसानों की स्थिति और बद्तर हो जाती है।

वर्ष 2004 से तोमासीना के पूर्वी प्रान्त में रूरल इनकम प्रमोशन प्रोग्राम चल रहा है। इसको वित्तीय सहायता, इण्टर नेशनल फण्ड फार एग्रीकल्चर डेवलेपमेन्ट (IFAD) आर्गेनाइजेशन ऑफ पेट्रोलियम एक्सपर्टिंग कन्ट्रीज (OPEC) फण्ड फॉर इन्टरनेशनल डेवलपमेन्ट की संस्था और मदगास्कर सरकार से मिली। इसका उद्देश्य एनालनजीरोफो तथा आस्टिननाना, दोनों क्षेत्रों में गरीब किसानों की आय को सुदृढ़ करना हैं। कार्यक्रम की मुख्य गतिविधियों में, मूल्य श्रृंखला प्रबन्धन हेतु ''पार्टनरशिप पोल'' के विकास द्वारा किसानों के समूह को सहयोग प्रदान करना था। प्रत्येक पोल में, उत्पादकों की संस्थाएं एवं कृषिगत सहकारी संस्थाएं हैं, जिसका लक्ष्य बाज़ार जुड़ाव केन्द्र (MAC), का प्रबन्धन है। ये पोल स्थानीय सरकारी प्राधिकरणों, उत्पादक समूहों, निर्यातकों और माइक्रोफाइनेन्स संस्थाओं को एक समूह में लेकर चलती है। वर्तमान में एनालनजीरोफो क्षेत्र में सात पोल कार्य कर रहे हैं तथा तीन अन्य पोल आस्टिननाना क्षेत्र हेतु तैयार हो रहे हैं। 'मार्केट एक्सेस सेन्टर' का लक्ष्य, उत्पादों का संग्रह करना, छोटे किसानों की समझ शक्ति में सुधार, उत्पादों की गुणवत्ता को बढ़ाना और व्यापारियों के साथ स्थायी साझीदारी का विकास करना था। प्रत्येक पोल का उत्तरदायित्व होता है कि वह अपने आस–पास से गुजरने वाले उत्पाद के विपणन और प्रबन्धन का कार्य करें साथ ही उत्पादकों की तरफ से क्रय–विक्रय हेतु व्यापारियों से विचार–विमर्श भी करें। प्रत्येक सेन्टर के सलाहकार का कार्य विपणन प्रबन्धन के अवसर, उत्पाद स्रोत की जानकारी एवं प्रबन्धन पर कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान कराना था। मार्केट एक्सेस सेन्टर की मुख्य चुनौती व्यापारियों और उत्पादकों में आत्मविश्वास पैदा करना था, जिससे सफलतापूर्ण इन गतिविधियों का निर्वहन किया जा सके।

शहद उत्पादन में उन्नति

वैसे तो यूरोप में मालागेसी शहद बहुत महँगा पड़ता है लेकिन इसके स्वास्थ्यकर गुणों की देख–रेख एवं व्यवस्था में कमी के कारण बाज़ार में इसकी हिस्सेदारी कम हो गई थी। अतः शहद के गुणों में वृद्धि हेतु पहल प्रारम्भ की गई, जिससे बाह्य बाजार में शहद पुनः प्रारम्भ हो गया। इन्हीं सब कोशिशों के बीच सन् 2004 में एनालनजीरोफो क्षेत्र के मधुमक्खी पालक 'मार्केट एक्सेस सेन्टर' में सम्मिलित हो गये। इस क्षेत्र में परम्परागत तौर पर एक घर में मधुमक्खियों के 1–5 कृत्रिम बक्से रखे गये जिसमें एक बक्से से 5 किलोग्राम शहद प्रति वर्ष प्राप्त होता परन्तु आय हेतु शहद की इतनी मात्रा पर्याप्त नहीं थी।

श्री नोजी ने, जिनका मधुमक्खी पालन पर 10 सालों का अनुभव है, इससे संबंधित समस्याओं के बारे में बताया कि मधमक्ख्यों को आकर्षित करना मुश्किल होता है। इसके लिए परम्परागत तौर पर सिट्रोनेला की पत्तियों को रगड़कर पेड़ के खोखले तने में मोम को रखा जाता है। इसके अलावा इस विधि में शहद में अशुद्धियाँ पायी जाती हैं, वह भी एक समस्या है। ऐसे अनुभवों को देखते हुए बाद के कार्यक्रम में किसानों को 500 कृत्रिम छत्ते दिये गये। समूह आयोजन और उन्हें प्रेरणा देना कार्यक्रम की मुख्य कसौटी तो थी ही साथ ही मशीनों द्वारा शहद का शुद्धिकरण भी कठिन कार्य था। इसमें किसानों को आधुनिक छत्तों के बारे में प्रशिक्षण भी दिया गया। एक आधुनिक छत्ता साल में तीन बार उत्पादन देता है एवं एक बार में लगभग 10 किलोग्राम शहद प्राप्त होगा।

'मार्केट एक्सेस सेन्टर' द्वारा विपणन

'मार्केट एक्सेस सेन्टर' राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार हेतु शहद के विपणन को सुविधाजनक बनाता है। इसमें शहद और अन्य उत्पादों को बाजार से थोड़े अधिक मूल्य पर लेते और ऐसे खरीदारों को बेचते, जिससे अधिक लाभ हो। बिक्री से हुए लाभ को सदस्यों में बाँट दिया जाता है, जो केन्द्र के विकास में सहयोग करता है। सदस्य किसान इस साझीदार व्यवस्था को अपनाते गये और नये समूह बनते गये । इस लेख के प्रकाशन तक विभिन्न उत्पादों हेतु नौ मार्केट एक्सेस सेन्टर सफलता पूर्वक विपणन में लगे हैं। ■

* **कन्ट्री प्रोग्राम मैनेजर फॉर मदगास्कार साइचेल्स**
आई०एफ०ए०डी० (इण्टरनेशनल फण्ड फार एग्रीकल्चरल डेवलपमेन्ट),
44 वाया पावोलो दोनो 00142 रोम, इटली
ईमेल : b.thierry@ifad.org; pprr.mg

** **ब्यूरो एफ०आई०डी०ए०–सी०ए०पी०एफ०आई०डी०ए०**
बैटिमेन्ट एनेक्स, मिनिस्ट्री द एलीवेज
एट दे ला पेधे, एनॉजी
एन्टानानारिवो 101, मदागास्कर
ईमेल : emyschncider@club-internet.fr

वातावरण के अनुकूल तथा सस्ता कीट-प्रबन्धन

एल० नारायण रेड्डी*

Ecological Pest Management
LEISA India Dec. 2007, Vol.9, No.4, Pg. # 35

कीट सम्बन्धित अधिकांश समस्याएं, संकर एवं संशोधित प्रजातियों, रसायनिक उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग, एकल फसल, असामयिक खेती (मौसम तथा ऋतु), अत्यधिक सघनता तथा एक ही फसल लगातार बोने के कारण ही उत्पन्न हुई हैं। यदि उपरोक्त तरीकों में सुधार कर लिया जाये तो अधिकांश कीट समस्याएं स्वतः ही दूर हो सकती हैं, उदाहरणार्थ जैविक खाद, फसल विविधता, मिश्रित एवं मौसम अनुरूप फसल, पेड़–पौधों के बीच उचित दूरी प्रबन्धन तथा फसल चक्र अपनाने से मृदा में कीटों का स्वतः गुणन (प्रजनन कर वृद्धि करना) रूक जाता है फलस्वरूप कीटों के प्रकोप को नियंत्रित किया जा सकता है। इसके साथ ही देशी बीजों का प्रयोग भी कीट–प्रबन्धन में मददगार होता है। आज की परिस्थितियों में ऐसे तरीकों को अपनाने के बावजूद भी पृथ्वी के तापमान में वृद्धि तथा अनिश्चित मौसम के कारण फसल पर कीटों के प्रकोप की संभावना बनी ही रहती है, इस प्रकार के फसल व मृदा प्रबन्धन के परिणामस्वरूप कीटों द्वारा फसलों में होने वाली क्षति केवल 6–8 प्रतिशत ही होती है।

रसायनिक कीटनाशक मंहगे होने के साथ–साथ हानिकारक भी होते हैं जिससे भोजन व पशु चारा दोनों ही विषाक्त हो जाता है। रसायनिक कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से लाभकारी परजीवी पक्षियों की कमी एवं हानिकारक कीटों की संख्या में तीव्र वृद्धि होने से वातावरण प्रदूषित होने के साथ ही आर्थिक नुकसान भी होता है। हरित क्रान्ति के बाद विगत 6 दशक से जो कृषि तकनीक अपनाई जा रही है, उसके कारण ही इस प्रकार की समस्या उत्पन्न हुई है। इस प्रकार अपने पूर्वजों के पारम्परिक ज्ञान का उपयोग ही हमारे लिए कृषि की इन विषम परिस्थितियों से निपटने में मददगार हो सकता है। खेती की सघन जैविक विधि स्वयं ही स्वस्थ एवं रोगरोधी पौधों को उगाने में मददगार होती है। पत्तियों, गोबर आदि के सड़ने के उपरान्त बनी गहरे रंग की खाद जो मृदा को उर्वर बनाती है, में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा 2 प्रतिशत से अधिक होती है। वह मृदा के विषाणु, फफूँद तथा कीटों के हमलों को नियंत्रित करने वाले लाभकारी अवयवों को विकसित करने में भी मदद करती है। मात्र स्वस्थ मृदा ही नहीं अपितु मृदा की जल धारण क्षमता भी मृदा उपजाऊपन की क्रिया को दोगुनी कर देती है, जो 8–10 टन प्रतिवर्ष तक होता है। 8–10 टन प्रतिवर्ष प्रति एकड़ के दर से लगातार उपजाऊपन भूमध्य क्षेत्र के देशों के लिए एक सामान्य बात है। खेती की सघन जैविक पद्धति पौधों के असंतुलित पोषण जैसी अनेक समस्याओं को कम कर सकती हैं।

यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि दीमक को कृषि का दुश्मन माना गया। वास्तव में दीमक तथा केंचुएं दोनों ही मृदा के निर्माता होते हैं। इन्हें मृदा का निर्माणकर्ता कहना भी अतिश्योक्ति न होगा।। नारायण रेड्डी के शब्दों में दीमक ''मुख्य निर्माणकर्ता'' तथा केचुंए ''सहायक निर्माणकर्ता'' होते हैं। ये मृदा में काफी खाली जगह बना देते हैं, जो मृदा में हवा की उपलब्धता (जड़ों के लिए ऑक्सीजन) सुनिश्चित करने में मददगार होता है। इससे मृदा में जल भी आसानी से अवशोषित हो जाता है। ज्यादातर लोग सोचते हैं कि दीमक पेड़–पौधों को खाकर समाप्त कर देते हैं लेकिन वास्तव में यह उन पौधों को खाता है जो नमी के अभाव में सूखने के कगार पर होते हैं या सूख जाते है। दीमक पेड़ के सूखे छाल को खाते हैं अन्यथा बरसात के दिनों में इन छालों पर फफूँद की वृद्धि को बढ़ावा देते है। वास्तव में दीमक वाली मिट्टी उर्वर ही नहीं अपितु जीवाणुनाशक भी होती है। हम इन दीमक के पहाड़ की मिट्टी का प्रयोग नहाने व दाढ़ी बनाने में भी कर सकते हैं। अफ्रीका के बहुत से देशों में इसका प्रयोग पौधे रोपण वाले गड्ढों की भराई हेतु प्रयोग किया जाता है।

सघन पौध रोपण में भूमि पर काफी छाया हो जाने से फफूँद तथा कीटों की वृद्धि तेज हो जाती है। गन्ध वाले पौधे जैसे तुलसी, लहसुन, प्याज तथा गेंदा आदि कीटरोधी होते हैं। गेंदा के पौधे जब तेज हवा से रगड़ खाते हैं तो इनसे तेज गन्ध निकलती है। यह गंध कीटों को खेत में जाने से रोकती हैं। गेंदा के पौधे के जड़ का स्राव ''नीमैटोड'' के द्वारा बहुत पसन्द किया जाता है, किन्तु यह उनके लिए जहर का कार्य करता है एवं खाने के बाद निमैटोड्स की मृत्यु हो जाती है। तीन किलोग्राम गेंदे के फूल को पीस कर 200 लीटर जल में घोल बना कर फसलों पर छिड़काव करने से बहुत से कीटों को नियंत्रित किया जा सकता है। परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इस घोल का छिड़काव सूर्य की तेज रोशनी में ही किया जायें क्योंकि बदली के दिनों में यह विष जैसा कार्य नहीं करता है अर्थात् इसकी विषाक्तता प्रभावी नहीं हो पाती।

इसी प्रकार यदि मक्के की सहयोगी पौध के रूप में सेम, कोहड़ा, कद्दू, खीरा, टमाटर के साथ बोया जाये तो यह उन पर कीटों को पहुँचने से रोकता है। कीटों को फंसाने (आकर्षित करने) वाले फसल जैसे भिण्डी एवं सरसों अधिकांश चूसक कीट को आकर्षित करते हैं जिन्हें आसानी से नष्ट किया जा सकता है। रोयें वाली सूँड़ी एवं इल्ली का मातृ पतंगा हजारों अण्डे पौधों के उपरी पत्तों पर ही देती है– जैसे सूर्यमुखी पर। किसान निरीक्षण कर आसानी से इन अण्डों को नष्ट कर सकते हैं अन्यथा जब अण्डों से निकलने के 5 या 6 दिन बाद नवजात रेशेवाली सूँड़ी व इल्ली पूरे फसल पर फैल जाती है, तब इसके बचाव हेतु कटोरे में जल भरकर थोड़ा सा किरोसिन तेल

डालकर उसके ऊपर तेज रोशनी रखने से बहुत से कीट आकर्षित होकर पानी में गिर जाते हैं एवं पानी में किरोसिन तेल होने से उससे बाहर नहीं आ पाते और अन्त में मर जाते हैं। शाम को खेतों में धुंआ करने तथा पीले रंग का मोटा कागज, जिस पर चिपकने वाला गोंद लगा हो, से भी कीटों को फंसा कर कीट नियंत्रण कर सकते हैं। पौधे विशेष रूप से धान के फसल में कीट नियन्त्रण हेतु पानी चलाकर उसमें थोड़ा किरोसिन तेल डाल देते हैं और एक रस्सी जिसे दो व्यक्ति पकड़े हों, को हिलाने से कीड़े नीचे खेत में भरे पानी में गिरकर मर जाते हैं।

सामान्यतः सफेद लार्वा के वयस्क, 2 सेमी0 वर्षा होने के तीन दिन बाद, मृदा से बाहर निकलते हैं तथा नीम, सूबबूल एवं आस–पास की उपलब्ध वनस्पतियों को खाते हैं। नर एवं मादा के मिलने के बाद, नर कीट की मृत्यु हो जाती है एवं मादा कीट नम मिट्टी में जाकर उसमें 60 से 80 अण्डे देकर स्वयं भी मर जाती है। यह अण्डे लार्वा में बदल कर फसल के जड़ों तथा खरपतवार को खाकर नुकसान पहुँचाते हैं। इनसे बचाव हेतु यदि किसान एक एकड़ खेत में नीम की 8 से 10 टहनियों को विष में डुबोकर, मानसूनी वर्षा के तत्काल बाद (कम से कम 2 सेमी0 से अधिक वर्षा होने पर) खेतों में गाड़ दें तो इससे बहुत से लार्वा का मृदा में ही नाश हो सकता है। इसके अतिरिक्त एक एकड़ भूमि पर चार किग्रा0 विवेरिया ब्रांगनिआर्टी जो कि मृदा के लाभकारी जीवाणु के लिए डीडीटी, बीएचसी एवं टाइमेट या अन्य विष के समान हानिकारक नहीं होता है, के प्रयोग से भी जड़ के लार्वा पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। चूँकि यह एक फफूँद है, जो भूमि में लगातार फफूँद की संख्या में वृद्धि भी करता रहता है परिणामस्वरूप जड़ के लार्वा की सारी अवस्थाओं पर नुकसान पहुँचता रहता है। अतः इसका एक बार प्रयोग ही पर्याप्त होता है। इसके अतिरिक्त नीम बीज या पत्तियों के 0.5 प्रतिशत रस का प्रयोग करना भी अधिकांश कीटों के नियंत्रण हेतु पर्याप्त हो सकता हैं क्योंकि यह एक प्रतिरोधक है, जो कीट के लिए विष का कार्य कर प्रजनन नियंत्रण तथा वृद्धि दर आदि को प्रभावित करता है। इसी प्रकार हम अपने आस–पास की अनेक जड़ी–बूटियों जिसे बकरियाँ नहीं खाती हैं, जैसे धतूरा, लैन्टाना, अजूस, मदार आदि के रस का छिड़काव कर अपने फसलों को कीटों से सुरक्षित कर उसे बचा सकते हैं। ■

* श्री निवासपुरा, वाया मारेलानाहल्ली
हनाबे, पोस्ट- 561203, डोड़ाबल्लापुर, तालुक
बैंग्लोर ग्रामीण जिला, कर्नाटक, भारत
फोन : 080-27601103
मोबाइल :09242950017, 9620588974

दस्तावेज़ीकरण अभ्यास में

दस्तावेजीकरण पर लीज़ा इण्डिया का संगठनात्मक कार्यक्रम : एक दस्तावेजी प्रक्रिया

द्वारा के.वी.एस. प्रसाद एवं टी.एम. राधा

दस्तावेज़ीकरण को मज़बूती प्रदान करने की प्रबल इच्छाशक्ति के साथ लीज़ा इण्डिया संकाय सहभागियों ने दो वर्षों तक दस्तावेजीकरण एवं संचार के कार्यक्रम चलाये हैं। इसमें लीज़ा इण्डिया टीम ने इलिया (ILEIA), नीदरलैण्ड के साथ मिलकर वर्ष 2003–2005 में भागीदारी की थी। संगठन के अन्तर्गत दस्तावेजीकरण एवं संचार कार्यक्रमों को मज़बूत बनाना व प्राथमिकता देना ही प्रमुख था। माइराडा, जी.ई.ए.जी. लीज़ा नेटवर्क और ए.एम.ई. फाउण्डेशन के चयनित कार्यकर्ताओं ने इसमें हिस्सा लिया।

पूरा कार्यक्रम अध्ययन की योजना पर बना था अर्थात करके सीखना एवं सीख कर तैयार करना इसकी महत्वपूर्ण प्रक्रिया थी। सारा कार्यक्रम, दस्तावेजीकरण एवं सारे सहभागियों के आपसी अनुभवों पर आधारित था। सभी कार्यकर्ताओं का लम्बे समय तक कार्यरत रहना इस कार्यक्रम का मुख्य आधार था। साथ ही ''करके सीखना'' कार्यशाला, योजना एवं विश्लेषण भी इसके मुख्य आधार थे।

विशेषज्ञ संदर्भ व्यक्तियों को आवश्यकतानुसार स्वतंत्रता प्रदान की गयी थी। इस कार्यक्रम ने हिस्सेदार संस्थाओं को इस बात को भी समझने में मदद की है कि संस्था के अन्दर दस्तावेजीकरण को और अधिक उद्देश्यपूर्ण एवं योजनाबद्ध बनाना आवश्यक होगा। परिणामस्वरूप शीघ्र ही विषय–वस्तु एवं प्रस्तुतिकरण की गुणवत्ता में सुधार देखा गया। सामाजिक सामुदायी संस्थाओं ने भी लोगों तक अपने अनुभव बांटने के लिए अधिक प्रयास किया है।

(अंग्रेज़ी भाषा में उपलब्ध)

कृपया संपर्क करें :

के.वी.एस. प्रसाद / टी.एम. राधा, लीजा इण्डिया, ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं0 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक, 3rd स्टेज,
बनशंकरी, बैंग्लौर–560085
फोन : +91-80-26699512/26699522
फैक्स : +91-080-26699410
ईमेल : lcisaindia@yahoo.co.in
वेबसाइट : http://india.leisa.info

पारम्परिक विधियों द्वारा मवेशियों का स्वास्थ्य प्रबन्धन

गंगाधर नायक*

Ecological Pest Management
LEISA INDIA, Dec.. 2007, Vol. 9, No 4, Pg. # 31

उड़ीसा राज्य के कन्धमाल जनपद का लगभग 60 प्रतिशत क्षेत्र वनाच्छादित है। यहाँ पर मुख्यतः अनुसूचित जनजाति (कोन्धा) तथा अनुसूचित जातियों का निवास है। यहाँ पूरब एवं दक्षिण सीमा की भूमि आस–पास के क्षेत्रों की अपेक्षा ऊँची है, जो समुद्र तल से लगभग 518–1067 मीटर पर है। यहाँ सिंचित क्षेत्र मात्र 4.48 प्रतिशत ही है जिससे फसल की पैदावार काफी कम है। इसलिए अधिकतर लोग जीविकोपार्जन के लिए वनों पर आश्रित हैं। यहाँ मवेशी पर्याप्त मात्रा में हैं, फिर भी पशुपालन संबंधी कोई सहायता मुश्किल से ही पहुँच पाती है। यहाँ की पशु उत्पादकता दो महत्वपूर्ण बीमारियों कीड़ो द्वारा घाव एवं वाह्य परजीवी (किलनी, जूँ) से प्रभावित होती है। इनके इलाज हेतु यहाँ की देशी विधियाँ हैं। इन विधियों की वैधता हेतु जी0 उदयगिरी, उड़ीसा स्थित कृषि विज्ञान केन्द्र (के0वी0के0) का कन्धमाल द्वारा संबंधित दो आई0टी0के0 (स्थानीय तकनीकी ज्ञान) गाँवों में ही परीक्षण किया गया।

खेत पर परीक्षण (आन फार्म टेस्टिंग)

जी0 उदयगिरी के निकट 'तेलिंगिया' तथा 'गसगुडा' नाम के दो गाँवों का चयन, कीड़ों (लार्वा) के घाव के इलाज में प्रयुक्त होने वाली 'कोलोकेसिया' (कचालू) की वैधता जांचने हेतु किया गया। बरसात में होने वाली यह बीमारी, मानसून के प्रारम्भ में (जून के प्रथम सप्ताह) मक्खियों की संख्या में तेजी से वृद्धि होने के कारण, शरीर के किसी भी जख्म पर बैठकर लार्वा छोड़ देने से संक्रामक रूप ले लेती है। अन्ततोगत्वा, घाव का आकार बढ़ता जाता है और समय से इलाज न होने पर उक्त अंग प्रभावित हो जाता है। इससे पशुओं के सामान्य क्रिया–कलाप व उत्पादकता प्रभावित होती है।

प्रभावित जानवरों को चिकित्सा अनुसार तीन समूहों में विभाजित किया गया, जिसका विवरण सारिणी–1 में वर्णित है:–

सारिणी–1 : कीड़ो (लार्वा) के घाव पर 'कोलोकेसिया' (कचालू) के लेई (पेस्ट) का प्रयोग

वर्ष	गाँव	चयनित किसानों की संख्या	प्रभावित पशुओं की संख्या	पेस्ट के प्रयोग की संख्या
2005	तेलिंगिया	12	20	06
	गसगुडा	08	15	04
2006	तेलिंगिया	12	18	07
	गसगुडा	07	14	04

ठीक हुए पशुओं की संख्या	हिमाक्स मरहम के प्रयोग की संख्या	ठीक हुए पशुओं की संख्या	बिना किसी चिकित्सा के	ठीक हुए पशुओं की संख्या
05	06	04	08	01
04	03	03	08	00
07	04	02	07	00
04	05	03	05	00

1. 'कोलोकेसिया' (कचालू) के लेई (पेस्ट) का प्रयोग लगातार 4–5 दिनों तक दिन में एक बार किया गया।
2. हिमाक्स मरहम का प्रयोग।
3. बिना किसी चिकित्सा के रोकथाम।

'कोलोकेसिया' द्वारा की गई चिकित्सा लगभग सभी पशुओं में सफल पायी गई, साथ ही हिमाक्स मरहम से की गई चिकित्सा के तुलना में भी बेहतर था। द्वितीय आन फार्म टेस्टिंग में वाह्य परजीवियों के उपचार हेतु किसिंमलैंग (स्थानीय नाम) की जड़ को दवा के रूप में उपयोग किया गया (सारणी–2)। कन्धमाल के पशुओं में पाये जाने वाले मुख्य परजीवी ''किलनी'', ''जूं'' आदि हैं। सामान्यतः इनका प्रभाव बसन्त ऋतु (फरवरी से अप्रैल) में होता है तथा गर्मी के अन्त (जून) तक बना रहता है। पहाड़ी क्षेत्रों में नदियों के किनारों पर बहुतायत रूप में पायी जाने वाली किसिंमलैंग की जड़ एकत्रित कर भली–भाँति धोया जाता है। मुट्ठी भर साफ जड़ को थोड़ा कूट कर किसी बर्तन में उसे 4–7 दिनों तक पानी में भिगोया जाता है और इस पानी का प्रयोग कपड़े द्वारा प्रभावित पशु के पूरे शरीर पर (आँख को छोड़ कर) किया जाता है। जिसकी पुनरावृति 3 दिन बाद आवश्यक होती है।

सारिणी–2 : वाह्य परजीवियों के नियंत्रण हेतु 'किसिमलैंग' का प्रयोग

वर्ष	गाँव	चयनित किसानों की संख्या	प्रभावित पशुओं की संख्या	जड़ के जल से उपचारित पशुओं की	ठीक हुए पशुओं की संख्या
2005	ब्रेंगुडा	13	25	25	19
	गसगुडा	10	18	18	16
2006	ब्रेंगुडा	11	22	22	17
	गसगुडा	08	20	20	18

वर्ष 2005–06 में कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा इस आई0टी0के0 (स्थानीय तकनीकी ज्ञान) के परीक्षण का कार्य किया गया। 'ट्रमसिंगया' तथा 'ब्रेगुडा' नामक दो गाँवों में कुल 23 किसानों का चयन किया गया। पशुओं के स्वस्थ होने की बारम्बारता को भी देखा गया। इसमें पशुओं को धोना मना था जबकि रसायनिक कीटनाशकों के प्रयोग के बाद पशुओं को धोना पड़ता है। एक बार के प्रयोग से ही अधिकांश जूँ के मर जाने के कारण पुनः इसके प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ी। इसका छिड़काव पशुओं के निवास स्थान पर करने से जूँ आदि की संख्या में अत्यधिक कमी पाई गई साथ ही इसका कोई दुष्प्रभाव भी नहीं देखा गया।

आन फार्म परीक्षण से यह स्पष्ट होता है कि कीटनाशक प्रयोग किये बगैर भी लार्वा (कीड़ों) के घाव एवं जूँ, किलनी पर पारम्परिक विधि द्वारा प्रभावी रूप से नियंत्रण पाया जा सकता है।

■

* सहायक प्राध्यापक एवं विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशु पालन)
कृषि विज्ञान केन्द्र (के०वी०के०)
उड़ीसा कृषि एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, जी० उदयगिरी–762100
कन्धमाल, उड़ीसा, भारत

जीवाणु सम्पदा से फसल गुणवत्ता एवं मृदा स्वास्थ नियंत्रण

जीवाणु, जीवन्त मृदा के जरूरी तत्व होते हैं। जिस मृदा में जीवाणु अधिक होते हैं वह मृदा बीमारियों एवं कीटों से लड़ने में सक्षम तथा उपज बढ़ाने की परिचायक होती है। वैज्ञानिक शोध भी दर्शाते हैं कि जैविक विधि की खेती प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धन पर निर्भर होती है, खास करके मृदा में जीवाणु विविधता व सघनता बढ़ाने में।

डी०पी० सिंह* एवं एच०बी० सिंह**

Living Soils
LEISA India June 2008, Vol.10, No.2, Pg. # 25-26

जीवाणुओं और सूक्ष्म जीवों के बीच में पाई जाने वाली पारस्परिक क्रियाएं चाहे वह आपसी हों, जीवाणु संबंधित हों या फिर उन्मूलनकारी हों पारिस्थितिकी तंत्र में बहुत आवश्यक होती है, जिससे मृदा तथा पौधे के स्वास्थ्य का नियंत्रण होता है। मृदा में पौधों एवं जीवाणुओं की आपसी तीव्र पारस्परिक क्रिया राइजोस्फोर द्वारा जड़ क्षेत्र में होती है। इस क्षेत्र में जीवाणु–जीवाणु, जीवाणु–पौधों एवं पौधों–पौधों के बीच होने वाली जैविक व जैव रसायनिक क्रियाएं विभिन्न सकारात्मक गतिविधियों जैसे लाभकारी जीवाणुओं की जैवविविधता, रोगजनित छोटे जीवों का उन्मूलन एवं मृदा की भौतिक एवं रसायनिक संरचना को प्रभावित करती हैं।

भूमि संबंधित हो रहे अधिकांश शोध, जिसमें अनुसंधानकर्ताओं द्वारा भूमि के नीचे और ऊपर की विविधता में सीधा जुड़ाव दर्शाया जाता हैं, का जैववैज्ञानिक लागत–लाभ और पारिस्थितिक प्रभाव स्पष्ट नहीं रहता है, लेकिन शोधों के निष्कर्ष ये बताते हैं कि फसल गुणवत्ता और उच्च पादप विविधता प्रबन्धन हेतु मृदा जीवाणु विविधता का उच्च स्तर आवश्यक है। मिट्टी में उपस्थित असंख्य अदृश्य जीवाणुओं, बैक्टीरिया, प्रोटोजोन्स, निमैटोड्स आदि के साथ ही सूक्ष्म जीवों जैसे केचुँआ व दीमक आदि की जैवविविधता, मिट्टी में जीवित तत्वों का आभास कराती है।

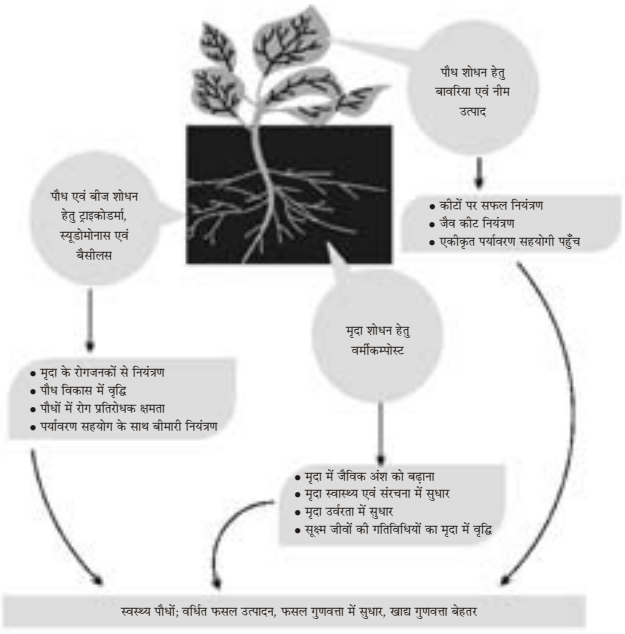

माडल : खाद्य गुणवत्ता बेहतर और वर्धित फसल उत्पादन हेतु कैसे जीवाणुलिंगी और प्रकृति प्रदत्तों का उपयोग होगा

मृदा स्वास्थ्य सुधार हेतु लाभकारी जीवाणु

किसी भी मृदा पारिस्थितिकी में जीवाणु अंगभूत अवयव के रूप में उपस्थित मृदा को जीवन प्रदान करते हैं। यह तो सर्वविदित ही है कि मृदा में जीवाणु सम्पदा की अधिकता उस मृदा को उपजाऊ बनाती है। ये जीवाणु जटिल वृहत् अणुओं और प्राकृतिक उत्पादों को लगातार सामान्य रूप तक अपघटित करते रहते है एवं मृदा के लाभकारी तत्वों को बढ़ाते हैं, जिससे धीरे–धीरे मृदा को पोषण मिलता हैं साथ ही मृदा में भौतिक–रसायन गुण भी कायम रहते हैं। जीवाणु अपनी उपापचय क्रियायों द्वारा पौधों के विकास, कीटों व रोगों से सुरक्षा एवं मृदा को उपजाऊ बनाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जीवाणु जैसे राइज़ोबियम, एजैटोबैक्टर, ऐजोस्पारिलियम, फास्फेट को घुलनशील बनाने वाले सूक्ष्म–जीव आदि को आजकल सरकारी तौर पर जैविक खाद के प्रतिपादन में गुणवत्ता मानक हेतु प्रयोग करने की मान्यता दी गई है।

कृषिगत अवशेष से प्राकृतिक तौर पर प्राप्त होने वाले इन लाभकारी सूक्ष्मजीवों की ओर अब सभी लोगों की रूचि बढ़ रही है, इन सूक्ष्म जीवों के जीवाणु–जीवाणु, जीवाणु–पौधा, उपापचय उत्पादन या दैहिक प्रतिरोध आदि से, प्राप्त प्रेरणा द्वारा रोग उन्मूलन और पौध उत्पादन में सुरक्षा प्राप्त होती है, जिससे अन्ततः उत्पादों में वृद्धि होती है।

सूक्ष्म जीवों के प्रचार–प्रसार : हमारे अनुभव

हमने अपने दशकों से भी अधिक के अनुभवों को बांटने हेतु बनारस, गाज़ीपुर, चन्दौली और आजमगढ़ के गाँवों के किसानों का चयन किया और उपयोगी जीवाणुओं को एकीकृत खेती के अवयव के तौर पर प्रयोग करने को प्रोत्साहित करना शुरू किया। उदाहरणार्थ इन्होंने ग्राम स्तर पर बीजशोधन हेतु ट्राइकोडर्मा प्रतिपादन तकनीक में सामान्य तरीके से गाय के गोबर पर दो जीवाणु, स्यूडोमोनास और बैसीलस का बार–बार प्रयोग कर ट्राइकोडर्मा का उत्पादन किया। इन जीवाणुओं का प्रयोग सब्जी उत्पादन जैसे टमाटर, आलू, बैंगन, फूल गोभी व भिण्डी, दलहनी फसलों में चना, अरहर, मसूर और अनाज जैसे बाजरा, धान आदि में किया गया।

सफलता की कहानियों ने इंगित किया है कि इन जीवाणुओं में मृदाजनित बीमारियों को रोकने की क्षमता एवं मृदा को सही भौतिक–रसायन परिस्थितियों में रखने की सामर्थ्य होती है, जिससे पोषण पाकर पौधे पादप हारमोन की सहायता से स्वस्थ रहते हैं। अभी आगे पौध स्वास्थ्य और सुरक्षा हेतु जीवाणुओं पर इनके प्रयोग करने का सही समय, दर और आवृति निश्चित करने के बारे में शोध जारी ही हैं।

जीवाणु पारस्परिक क्रिया, जैव नियन्त्रण और पादप स्वास्थ्य

राइजोस्फेयर या जड़ का क्षेत्र जहाँ सूक्ष्म जीवों का जमघट होता है, जैविक व अजैविक दोनों प्रकार के घटकों द्वारा प्रभावित होते हैं। इसमें से राइजोबैक्टीरिया अधिक प्रभावी होते हैं, जोकि जड़ों के पास, उनकी सतह पर ही रहना पसन्द करते हैं तथा पादप वृद्धि व मृदा स्वास्थ्य हेतु अहम् भूमिका अदा करते हैं। स्वजीवी व सहजीवी दोनों प्रकार के बैक्टीरिया पारिस्थितिकी के इस महत्वपूर्ण अंग में जुड़कर सहयोग करते हैं। पारिस्थितिकी के वास्तविक कार्यकर्ता यही है, जो अपने विभिन्न प्रभावों द्वारा मृदा स्वास्थ्य व फसल उत्पादन को घटा–बढ़ा देते हैं तथा इन सारे जीवों की जनसंख्या कृषि पारिस्थिति के जैविक अंश पर निर्भर होती हैं। जीवाणुओं की ये क्रिया–प्रतिक्रिया जो राइजोस्फेयर में होती हैं तथा रोगशमन में शामिल होकर स्थाई फसल उत्पादकता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। ये जीव पौधों के विभिन्न क्रियाओं जैसे कीटाणुशमन, प्रतिद्वंद्विता, परजीविता और प्रतिरोध प्रेरण आदि द्वारा पादप वृद्धि व रोगशमन को प्रभावित करते है। जिसके कई भली– भाँति लिखित प्रमाण भी हैं। अधिकांश जीवाणु क्रियाओं जहाँ राइजोस्फेयर में कवक व बैक्टीरिया दोनों होते हैं, जैवनियंत्रण को अधिक बढ़ावा देते हैं।

जैवविविधता व मृदा स्वास्थ्य को पोषण देती, जैविक विधियाँ

वैज्ञानिक शोध दर्शाते हैं कि जैविक खेती की विधियाँ, प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धन पर ही पूर्णतः निर्भर हैं। यह भी महसूस किया गया कि उपयुक्त जैविक विधियाँ, मृदा में सूक्ष्म जीव–जंतुओं की वृद्धि के साथ ही पोषण–पुनर्चक्र व मृदा संरचना में मददगार होती हैं। साथ ही फसल चक्र, हरी एवं जैविक खाद, कम या शून्य जुताई व रसायनिक कीट व खरपतवार नाशको के प्रयोग पर पाबन्दी लगाने आदि गतिविधियों को अपनाकर मृदा एवं पौध स्वास्थ्य को बढ़ाया जा सकता है।

आर्थोपॉड व केचुओं की वृद्धि में सहायक

जैविक खेती विधि प्रजाति बहुलता और लाभकारी केचुओं एवं आर्थोपॉड की संख्या में वृद्धि करती है, जिससे मृदा उर्वरता भी बढ़ती है। परभक्षी संख्या में बढ़ोत्तरी होने से मृदा के हानिकारक जीवों का शमन होता हैं। आम कृषि विधियों की अपेक्षा जैविक विधियाँ जैसे कैराबिड 100 प्रतिशत तक, स्टाफीलिनिडस 60–70 प्रतिशत और मकड़िया 70 –120 प्रतिशत तक आर्थोपॉड की संख्या व घनत्व को बढ़ाती हैं। परम्परागत विधि के अपेक्षाकृत जैविक तंत्र में केचुँओं की उपस्थिति 50–80 प्रतिशत अधिक पायी गयी। संख्या बढ़ने से जैवभार 30–40 प्रतिशत अधिक होता है। यह अन्तर रसायन आधारित कृषि पद्धति में और अधिक था।

स्वस्थ मृदा हेतु सिमवायोन्टस की उपस्थिति

जैविक फसलें सहजीविता की प्रक्रिया के कारण पौधे की जड़ों द्वारा मृदा खनिज का उपयोग कर फसल वृद्धि करती हैं। औसतन जैविक फसल के अपेक्षाकृत उन फसलों की जड़ों में जीवाणुओं का बसेरा अधिक पाया जाता है, जिसमें उर्वरक का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता है। सामान्यतः पाम्परिक फसलों के साथ रसायनिक खेती में जीवाणु उत्पादकता में करीब 30 प्रतिशत कमी आ जाती है। जाड़ों में उत्पादित होने वाले गेहूँ में बड़ी मुश्किल से ही इनकी उपस्थिति होती है। वैसे सभी मृदा में सक्रिय माइकोराजा के कुछ तंतु अवश्य होते हैं, फिर भी यह जैविक मृदा में अधिक अच्छे से फैले होते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि मृदा में अतिरिक्त माइकोराइजल से मृदा पोषकता उच्च स्तर पर होती है और पौध सुरक्षा सिमबायोसिस का दमन करता है।

सूक्ष्म जीवों की अधिकता से मृदा स्वस्थ

जैविक मृदा में सूक्ष्म जीवों की अधिकता के कारण केवल लवण सक्रियता ही नहीं वरन् स्थाई मृदा को जैविक अंश जैसे हयूमस और अन्य सामान्य कार्बन संयोजन को बनाने में भी सहायता मिलती है। इस तरह से, पोषण चक्रण तेजी से होता है और मृदा स्वस्थ होती है। जैविक मृदा में सूक्ष्म जीवों की संख्या, उर्वरकयुक्त परम्परागत खेत की मृदा की अपेक्षा 20–40 प्रतिशत अधिक होता है जबकि बिना उर्वरक वाले परम्परागत खेत की मृदा में उर्वरकों की संख्या 60–85 प्रतिशत अधिक हो जाती है। जीवाणु जीवभार की मात्रा और इनका अपघटन एक दूसरे से संबंधित हैं। यदि मृदा में उच्च जीवाणु जीवभार है तो जटिल कार्बन के सूक्ष्म अंश बिना अपघटित हुए ही फसल को स्वस्थ्य बनाते हैं।

मृदा में जैवरसायन गतिविधियों को जीवाणु अधिकता द्वारा बल

मृदा परिस्थितिकी में जीवाणुओं की गतिविधियों द्वारा महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित होते हैं। इस बात की पुष्टि मृदा एन्जाइम्स द्वारा हो जाती है। जीवकोशिका से संबंधित एन्जाइम, ''डीहाइड्रोजीनेज'' की गतिविधि को मापकर सूक्ष्म जीवाणु की सभी गतिविधिओं का अनुमान लगाया जा सकता है। यह एन्जाइम श्वसन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मृदा में प्रोटिएजेज, जिसमें अधिकतर जैविक नाइट्रोजन, प्रोटीन होता है, प्रोटीन कम्पाउण्ड को सरल घटक में द्विखण्डित करते हैं। फास्फेट, जैविक फास्फोरस कम्पाउण्ड में द्विखण्डित होने के कारण मृदा में पौधनाल और जैविक फास्फोरस के बीच बाँध के रूप में संबंध स्थापित हो जाता है। जैविक मृदा में एन्जाइम गतिविधि परम्परागत मृदा की अपेक्षा उच्च होती है। जीवाणु जैवभार और एन्जाइम की गतिविधियाँ से मृदा अमलत्व और मृदा में उपस्थित जैविक पदार्थ से बहुत गहरे तक जुड़ी होती हैं। जैविक खेत में विभिन्न प्रकार के जीवाणु पाये जाते है, जो मृदा में कार्बन प्रबन्धन का कार्य तो करते हैं इससे भी ज्यादा जीवाणुओं की वृद्धि करते हैं। जैविक खेती में खनिजों एवं जैविक पदार्थों की तीव्र वृद्धि को मृदा पोषण वृद्धि का द्योतक माना जा सकता है। इस प्रकार अन्ततः जैविक पदार्थों की अधिकता अचल मृदा हयूमस में बदल जाती है।

आभार : डी0पी0 सिंह, आर्थिक सहयोग हेतु काउन्सिल ऑफ साइन्टिफिक एवं इण्डस्ट्रियल रिसर्च (SCIR), नई दिल्ली को धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

■

*कवक पादप रोग विज्ञान विभाग,
कृषि विज्ञान संस्थान,
बनारस हिन्दू विश वविद्यालय,
वाराणसी– 221005
ईमेल : dpsfarm@sancharnet.in, hbs1@rediffmail.com

आदिवासियों की देशी कृषि पद्धति : खाद्य, पोषण एवं दवा का स्रोत

अरूणांचल प्रदेश के आदिवासी जिस पर्वतीय कृषि पद्धति को अपनाते हैं उसमें विविध प्रकार की फसल प्रजातियाँ, औषधीय पौधे, वन्य प्रजातियाँ शामिल है। इस कृषि पद्धति द्वारा समुदाय के किसान खाद्य भण्डारण, संतुलित पोषण और स्वास्थ्य लाभ के साथ जैव विविधता का संरक्षण भी कर रहे हैं। भविष्य में इन प्रजातियों की प्रभाविता व लाभ हेतु आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार के पौधों की प्रजातियों का संरक्षण किया जाये एवं जैव विविधता की पहचान और उसकी देखभाल को सराहा जाय।

एस०के० सारंगी*

Farming Diversity
LEISA India March 2009, Vol.11, No.1, Pg. # 22-23

अरूणांचल प्रदेश की विशाल जनजातियों में आदिवासी जनजातियाँ (प्रदेश की 9 प्रतिशत जनसंख्या) शामिल हैं, जो अधिकांशतः पश्चिम सियांग, पूर्वी सियांग तथा कुछ ऊपरी सियांग, ऊपरी सुबनजीरी और डिबेंग घाटी में निवास करती हैं। इस क्षेत्र का मौसम आर्द्र उष्ण कटिबन्धीय के साथ भारी वर्षा वाला है। साल के लगभग आठ महीने (मार्च–अक्टूबर) में ही औसतन 2000 मिमी से अधिक वर्षा हो जाती है। इन जनजातियों की कुछ उपजातियाँ भी हैं, जो अबोतानी के वंशज में विश्वास करती हैं। यह आदिवासी 50 से ज्यादा पहाड़ी गाँवों में रहते है। गाँव का चयनित मुखिया ''गाँव का बूढ़ा'' के नाम से जाना जाता है, जो ग्राम पंचायत की तरह ग्राम स्तरीय शासन की मध्यस्थता करता है।

आदि जनजातियाँ अपनी आजीविका हेतु झूम खेती (जिस भूमि पर की जाती है उसे झूम भूमि कहते हैं), टिकाऊ खेती (गृहवाटिका) और वहाँ से लगे वनों पर निर्भर हैं। भूमि एवं मालिकाना हक सामुदायिक और व्यक्तिगत दोनों प्रकार का है। सभी गाँवों में कुछ जमीन सामुदायिक एवं कुछ परिवार की अपनी व्यक्तिगत है।

सारिणी 1

भूमि प्रकार	स्वामित्व	आजीविका श्रोत	जोत आकार औसत प्रतिशत
स्थाई वन	समुदाय	इमारती लकड़ी, जलौनी, बेंत, बाँस, ताड़ पत्ते, औषधीय पौधे, जंगली खाने योग्य फल, सब्ज़ियाँ, फूल और मशरूम, जानवरों हेतु आवास	–
झूम वन	व्यक्तिगत परिवार	चावल, मक्का, मोटे अनाज, राइस बीन, परम्परागत सब्ज़ियाँ	45.0
बागीचा	व्यक्तिगत परिवार	संतरा, नींबू, और अनन्नास	24.0
गृहवाटिका	व्यक्तिगत परिवार	स्थानीय हरी सब्ज़ियाँ, औषधीय झाड़ियाँ आदि	10.0
घाटी (निचली भूमि)	व्यक्तिगत परिवार	चावल और मछली	21.0

यहाँ लगभग सभी घर के पास जमीन का एक टुकड़ा अवश्य होता है। वैसे लघु व सीमान्त कृषक भूमि की कमी को मछली पालन, पशुपालन और जंगलों से पूरा कर लेते हैं। सामान्यतः झूम भूमि का प्रयोग प्रथम दो वर्षों तक उगी हुई वनस्पतियों को काटकर व जलाकर परती छोड़ने के बाद करते हैं, जिससे अगले 7 सालों तक इनकी उर्वरता बनी रहती है।

आदिवासी किसान मृदा उर्वरता को बनाये रखने में बहुत रूढ़िवादी होते हैं। उनको दृढ़ विश्वास होता है कि रसायनिक उर्वरक मृदा को कठोर बनाते हैं, जो फसल वृद्धि हेतु अनुपयुक्त हैं। झूम भूमि के उर्वरता प्रबन्धन हेतु पौधों की राख का प्रयोग किया जाता है और घरेलू जानवरों से प्राप्त खाद को गृहवाटिका व बागीचों में डालते हैं। ढलान वाली झूम भूमि के क्षरण को रोकने के लिए अधजली बड़ी लकड़ियों को ढाल पर रखते हैं, जुताई के बाद जिसके मृदा में मिलने से इसकी पोषकता बढ़ती है इसके साथ ही समुदाय में पौधों और बीज का आदान–प्रदान भी होता है जिससे सभी कृषि लागत अपने इसी समुदाय द्वारा ही पूरी हो जाती है।

विविधता अनुरक्षण

बीज संरक्षण व आनुवांशिक विविधता को बनाये रखने में महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। झूम पद्धति में सब्ज़ी (बैंगन, खीरा, भिण्डी आदि), दलहन जैसे राइस बीन तिलहन (तिल) और अनाजों (चावल, मक्का और मोटे अनाज) के साथ मुख्य फसल चावल भी शामिल होती है जिससे इस पद्धति में उच्च फसल विविधता देखने को मिलती है। चावल के साथ मक्का की फसल पूरे क्षेत्र में देखने को मिलती है। झूम भूमि की मेड़ों पर मक्का और अन्य फसलें बोई जाती हैं। मक्का और चावल कटने के बाद जड़ वाली फसलें अरवी, रतालू और घुइयाँ देखने को मिलती हैं। सामान्यतः भूमि की उत्पादन क्षमता प्रथम वर्ष में, द्वितीय वर्ष की अपेक्षा अधिक होती है लेकिन झूम भूमि से भी ज्यादा उत्पादन क्षमता घाटियों की नम भूमि वाली चावल की खेती में होती है। तुलनात्मक लाभ–लागत का अनुपात 1.25, 1.50 और 1.75 क्रमशः, झूम द्वितीय वर्ष, प्रथम वर्ष और घाटियों की चावल की नम भूमि वाली खेती का है।

किसानों में, लम्बे समय के अनुभव से खेती में विभिन्न प्रकार के पौधों में उपस्थित औषधीय गुणों और पोषक तत्वों का व्यापक ज्ञान विकसित हुआ है। मिथ्या अनाज, परम्परागत दालें, तिलहन और बहुत से जंगली पौधे, इन उत्तर पूर्वी भारत के आदिवासी लोगों के खाने के मुख्य भाग के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। अभी भी निकटवर्ती वन–उत्पाद दैनिक आहार की कमी की पूर्ति हेतु उपयोगी होते हैं और प्रायः स्थानीय बाजार में बेचे जाते हैं। ये सभी प्रजातियाँ बहुत प्राचीन समय से औषधि और पौष्टिक भोजन के रूप में प्रयोग होती आयी हैं। ये केवल खाने में विविधता ही नहीं प्रदान करती वरन् विभिन्न प्रजाति के फल से पूरे सालभर अलग–अलग समयों पर पोषण–सुरक्षा भी प्रदान करती हैं।

मूल आवश्यकताओं को पूर्ण करता जैवविविधता युक्त प्रक्षेत्र

इस पहाड़ी क्षेत्र के लोगों की भारी मात्रा में खाने की आपूर्ति इन जंगली पौधों और उनके अन्य भागों से होती है। शायद यही एक रास्ता होता है, जिससे वे अपने खेतों व आसपास के पौधों से अधिकाधिक लाभ और अच्छी सेहत के लिए संतुलित आहार भी पा सकते हैं। विभिन्न प्रकार की सब्ज़ियों, फलों और रसायन मुक्त खाद्य पदार्थ के उपभोग से यहाँ के लोगों में रोगरोधी क्षमता अधिक और विटामिन अल्पता बहुत कम पायी जाती है। यहाँ के परम्परागत पौधे बड़ी संख्या में आम बीमारियों के उपचार हेतु दवा के रूप में प्रयुक्त होते हैं जैसे– चर्मरोग, पेट की बीमारियां, उच्च रक्तचाप, आकस्मिक चोट से खून आना आदि। इसलिए ये लोग आधुनिक दवा पद्धति पर अपने सामान्य स्वास्थ्य समस्याओं हेतु बहुत कम विश्वास करते हैं। इनकी परम्परागत कृषि पारिस्थितिकी में अनाज, सब्ज़ियों और औषधीय पौधों की लगभग 28 प्रजातियाँ, फलों की 25 प्रजातियाँ और वन्य पौधे की 13 प्रजातियाँ, अलग–अलग संयोजन में उगाई जाती हैं।

फसल विविधता : संतुलित पोषण एवं जोखिम कम करने में सहायक

अरूणांचल प्रदेश के मध्य बेसार एन.इ.एच. क्षेत्र हेतु आईसीएआर रिसर्च काम्पलेक्स के शोधरूप में इनमें से कुछ पौधों को चिन्हित और संरक्षित किया गया है।

पर्यावरणीय और आर्थिक लाभ को छोड़कर एक ही भूभाग में विभिन्न प्रकार की फसलों को उगाने से फसलों के विफल होने का जोखिम भी कम हो गया है। आदिवासियों की परम्परागत कृषि पद्धति प्राकृतिक व जैविक है, परिणामस्वरूप यहाँ के समुदाय को स्वास्थ्य लाभ मिलता है।

एकीकृत ज्ञान श्रोत

यहाँ कुछ ही औपचारिक संस्थाएं हैं जैसे राज्य कृषि औद्योगिक विभाग, बहुफसली परियोजना (एम.सी.पी.) और सिंचाई व बाढ़ नियंत्रण विभाग (आईएफसीडी), लेकिन ये कुछ निवेश (बीज / खाद) की आपूर्ति करने तक ही सीमित होती हैं और जिनका प्रयोग किसान यदा–कदा ही करता है। वैसे भी समुदाय अपनी परम्परागत खेती में दृढ़ विश्वास रखता है। ये अपनी परम्परागत खेती को छोड़कर आधुनिक कृषि पद्धति को अपनाने के लिए तभी तैयार होते हैं, जब उन्हें इस बात का विश्वास हो जाता है कि ये पारिस्थितिकी की दृष्टि से सुरक्षित हैं।

अभी तक झूमिंग में जो भी तरीके अपनाये गये हैं, वह पूर्णतः परम्परागत, वर्षों के अनुभव व पुर्वजों से पाये गये हैं फिर भी व्यवस्थित खेती जैसे बागों और घाटियों में ये कभी–कभी प्रसार अभिकरणों से प्राप्त जानकारियों को समाहित करते रहते हैं उदाहरण के तौर पर पुराने खत्म हो रहे बागों को नया करने और रखरखाव सम्बन्धी नयी जानकारी एवं बीज, पौधरोपण सामग्री का प्रयोग।

निष्कर्ष

अरूणांचल प्रदेश के पश्चिम सियांग जिले के आदिवासी बहुत सारी फसल प्रजातियों की खेती अपनी परम्परागत पद्धति से करते हैं। जो कि समुदाय हेतु भोजन, चारा, जलौनी, फाइवर पोषकता और दवा प्रदान करते हैं। अकाल और अन्य प्राकृतिक संकट के दिनों में, मानव जीवन हेतु लाभकारी यह फसलें और सब्ज़ियाँ मुख्य भोजन की तरह महत्वपूर्ण होती हैं। आज ये सब्ज़ियाँ और कन्द–मूल जिनका विशेष पोषण मूल्य हैं, विलुप्त होने के कगार पर हैं। गरीब जनसंख्या को ऊपर उठाने हेतु इन पौधों की शक्ति का लाभ लेने और विविधता संरक्षण हेतु विभिन्न पारिस्थितिकीय परिस्थिति में इन संकटापन्न और लाभकारी पौधों की खेती आवश्यक है। स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सम्पत्ति के आधार पर ही कृषिगत विकास की बात होनी चाहिए न कि उनमें हेरफेर की।

■

* वरिष्ठ वैज्ञानिक (एग्रोनामी)
क्षेत्रीय शोध केन्द्र
केनिंग टाउन, साउथ 24 परगनाज,
पश्चिम बंगाल- 743 329, भारत
ईमेल :sukanta_sarangi@yahoo.com

''अपनी आजीविका अपने हाथ''

कृषि प्रणाली में वृक्षारोपण, पशुपालन, गृहवाटिका, मत्स्य, मुर्गी/बत्तख पालन आदि का समावेश इस तंत्र के स्थायीकरण में दृढ़ स्तम्भ की तरह कार्य करता है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र की जलवायु मे त्वरित परिवर्तन के कारण बाढ़ और सूखा दोनों ही स्थितियाँ उत्पन्न होती है। इन स्थितियों से निपटने हेतु इस क्षेत्र के कृषक समुदाय एकीकृत कृषि प्रणाली को अपनाकर आजीविका के स्थाईत्व हेतु अग्रसर हो रहे हैं। यह लेख ऐसे ही प्रगतिशील कृषक की कृषि प्रणाली को दर्शाता है।

डा० अनीता सिंह एवं श्री अभिनेष कुमार*

उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिला, ग्राम मीरपुर के निवासी ब्रम्हदेव मल्ल, एक सीमान्त कृषक हैं। यह अपने क्षेत्र के प्रगतिशील कृषक भी हैं जो कि अपने पूरे क्षेत्र में कीटप्रबन्धन एवं सिंचाई आदि की नई तकनीकों के प्रचार–प्रसार और उन्हें स्वयं अपनाने में सदैव अग्रणी रहते हैं। इसके साथ ही साथ कृषक अपनी आजीविका को कैसे व्यवस्थित कर सकते है इसकी मिशाल भी है जिसे देखकर अन्य गाँवों के लोग भी इनकी तकनीक को अपनाकर सदैव लाभ की स्थिति में रहते हैं। उत्तर प्रदेश की अग्रणी स्वयं सेवी संस्था गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप, गोरखपुर से जुड़कर श्री ब्रम्हदेव मल्ल अपने क्षेत्र में मॉडल किसान के रूप में अपनी पहचान बनाये हुए हैं जिसके परिणाम स्वरूप यह अपनी सोच को अन्य कृषकों में भी बांटते रहते हैं।

श्री ब्रम्हदेव मल्ल के पास कृषि योग्य 2 एकड़ भूमि हैं, जिसमें फसल चक्र अपनाकर मिश्रित खेती करते है। 10 डिसमिल का एक तालाब भी है जिसमें यह मत्स्य पालन विगत कुछ वर्षों से करते आ रहे हैं अभी 6 महीनों से इन्होंने इस तालाब में बत्तख पालन भी शुरू कर दिया है। घर के आस–पास के क्षेत्र को गृहवाटिका और पशुपालन के साथ मुर्गीपालन में भी उपयोग करते हैं। इन्होंने मुर्गीपालन हेतु देशी व ब्यायलर प्रजाति की मुर्गियों का संयोजन किया हुआ है। आजीविका को और सुदृढ़ करने हेतु बकरी पालन भी करते हैं। आज ब्रम्हदेव के पास बरबरी नस्ल की कुल 6 बकरियाँ हैं।

लागत लाभ विश्लेषण (वार्षिक)

गतिविधि	लागत (रू0)	कुल आय (रू0)	लाभ (रू0)
गृहवाटिका	3500	17500	14000
कृषि उत्पादन	5000	20000	17000
बकरी पालन	8000	20000	12000
मुर्गी पालन	23600	40000	16400
बत्तख पालन	1200	–	–

इस प्रकार की गतिविधियों से कुल 59400 रुपये का वार्षिक लाभ है। ब्रम्हदेव मल्ल बताते हैं कि वर्ष 1996 में सरकार द्वारा किसानों की बायोगैस योजना के अन्तर्गत हमारे गाँव में भी 3 बायोगैस प्लान्ट स्थापित किया गया जिसमें से एक प्लान्ट हमने अपने यहाँ लगवाया और यह आज तक लगातार 12 वर्षों से चल रहा है। मैं इसका भरपूर उपयोग कर रहा हूँ। इसे चलाने हेतु 50 किलोग्राम गोबर और समान मात्रा में पानी मिलाने की आवश्यकता होती है। इसके उपयोग से

कृषि प्रवाह तंत्र

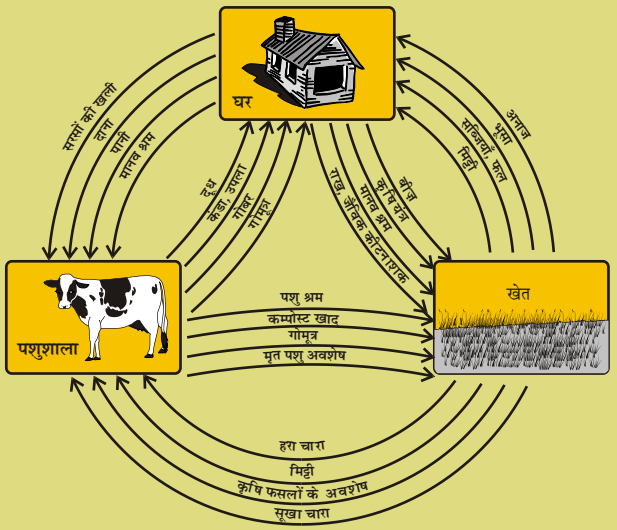

हमारे यहाँ भोजन बनता है और इसके साथ ही एक बल्ब या लैम्प भी रात के समय 5–6 घण्टे तक जलता है आज जहाँ गैस के कनेक्शन के लिए लम्बी कतार लगती है वहीं हमे आज तक रसोई गैस के सिलेण्डर लेने की आवश्यकता हीं नहीं पड़ी, साथ ही ग्रामीण क्षेत्र में बिजली न रहने के कारण इससे रोशनी की सुविधा भी उपलब्ध होती है। इस गोबर गैस प्लान्ट से वर्ष में एक बार खाद निकासी करते हैं जो लगभग 4 ट्राली होता है जिसमें सामान्य गोबर खाद की अपेक्षा 2 गुना ज्यादा पोषक तत्व होते है। इस खाद में खरपतवार के बीज भी सड़कर नष्ट हो जाते हैं जिससे खेत में खाद डालने पर खरपतवार की समस्या भी नहीं आती है। सरकार इस समय जब केंचुआ खाद का टैंक बनाने के लिए भी प्रोत्साहित कर रही है परन्तु हमने तो अपने पूरे खेत को ही 2 केचुएँ का टैंक बना दिया है क्योंकि मिट्टी में रसायनिक दवाओं का प्रयोग बिल्कुल नहीं करता हूँ जिससे अन्य लाभदायक जीवों का संरक्षण भी हमारे खेतों में होता है।

इनकी आजीविका सुदृढ़ होने का श्रेय उपलब्ध संसाधनों के परस्पर तालमेल से ही है, जिससे आज खाद्य सुरक्षा के साथ ही भोजन में पोषक तत्वों की उपस्थिति के साथ, मांस और दूध की उपलब्धता भी सुनिश्चित हो गई है साथ ही खेतों के लिए जैविक खाद भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाती है।

■

*गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224 पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड, पो०बा०–60
गोरखपुर– 273001, उत्तर प्रदेश (भारत)
ईमेल : geag_india@yahoo.com